

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अप्रैल २०१७



दो दिव्यताएँ जो एक हैं

विषय-सूची

| | |
|----------------------------------|----|
| सन्देश/सम्पादकीय | ३ |
| (श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन) | |
| दो दिव्यताएँ जो एक हैं | ४ |
| अविभाज्य ऐक्य | ५ |
| श्रीअरविन्द की शक्ति | १९ |
| श्रीमाँ की शरण लो | २५ |

‘पुरोधा’—विशेषांक

| | | |
|------------------------------------|----------------------|----|
| ‘तुम्हीं सो गये... | वन्दना | ३२ |
| रवीन्द्रजी The Rest-Less one | पुरुषोत्तम कोठारी | ४१ |
| कर्मयोग के साधक : श्री रवीन्द्रजी | स्व. ज्ञानवती गुप्ता | ४७ |
| हृदय-वन्दना | हरि भाई | ४९ |
| श्री रवीन्द्रजी की जन्म-शताब्दी पर | कनिष्ठा | ५१ |
| “मत्कर्म परमो भव” | अर्चना माहेश्वरी | ५५ |
| झंझु की सूचना | | ५८ |

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :

एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पांच वर्ष—८६०रु.।

पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटजी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



सन्देश

भागवत चेतना तुम्हारा रूपान्तर करने के लिए काम कर रही है। उसे अपने अन्दर खुल कर काम करने देने के लिए तुम्हें उसकी ओर खुलना चाहिये।

सम्पादकीय : हर बार जब अवतार जन्म लेते हैं तो 'उनकी शक्ति' भी किसी-न-किसी रूप में उपस्थित रहती है। लेकिन सामान्यतः वह पृष्ठभूमि में ही बनी रहती है। पहली बार हम देख रहे हैं कि न केवल दोनों ने एक साथ धरती पर पदार्पण किया है बल्कि वस्तुतः भागवत क्रीडा में 'शक्ति' सीधी मानवता पर क्रिया कर रही है। इसका कारण सम्भवतः इस तथ्य में निहित है कि इस बार न केवल धर्म के सन्तुलन को बनाये रखने या क्रमविकास की सीढ़ी में एक और डण्डा जोड़ने का प्रश्न है, बल्कि इसके साथ-साथ पूरी तरह से एक 'नूतन सृष्टि', एक नये जगत् के जन्म का सवाल है। वैसे 'नूतन सृष्टि' का विचार धरती की चेतना में कई बार बोया जा चुका है, और उसकी प्रसव-पीड़ा तथा उसकी रचना को केवल 'भगवती शक्ति' ही रूप दे सकती है। यही कारण है कि श्रीअरविन्द ने स्पष्टतः और सुनिश्चित रूप से कह दिया है कि उनकी तथा श्रीमाँ की चेतना में कोई अन्तर नहीं है, साथ ही इस परम सत्य का भी उजागर किया है कि उनके 'सर्वांगीण योग' का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पग है, श्रीमाँ की ओर खुलना और उनकी शरण में जाना। इस अंक में श्रीअरविन्द के योग के इन्हीं केन्द्रीय सत्याँ का उल्लेख किया गया है।

'पुरोधा' का अंक विशेषांक है। 'अग्निशिखा', 'पुरोधा' के प्रणेता श्री रवीन्द्रजी का यह शताब्दी-वर्ष है। उन्हीं की याद में कुछ नये, कुछ पुराने लेखों का समावेश किया गया है।

दो दिव्यताएँ जो एक हैं

वे दो दिव्यताएँ हैं पर वे एक परमेश्वर हैं जो अनेक लोकों में लीला करते हैं;
विद्या और अविद्या में वे बोलते और मिलते हैं
और ज्योति और अन्धकार उनके नयनों का आदान-प्रदान है।
हमारे सुख और दुःख उनका आलिंगन औ' संघर्ष हैं,
हमारे कर्म औ', हमारी आशाओं के साथ उनकी कहानी आबद्ध है;
हमारे विचार और जीवन में वे गुप्त रूप से गठबन्धित हैं।
यह विश्व उनकी एक अनन्त लीला की रंगभूमि है :
क्योंकि यहाँ जो दिखता है वह पूरी तरह वैसा नहीं होता है;
यह एक सत्य का एक स्वप्न-तथ्य दर्शन है
पर यदि इस स्वप्न का अस्तित्व न होता तो यह पूर्ण सत्य नहीं बन पाता,
शाश्वतता की धूमिल पृष्ठभूमि के सम्मुख
यह एक दृश्य-प्रपञ्च भी महत्त्वपूर्ण दीखता है;
हम इसके आनन को तो अंगीकार कर लेते हैं पर इसके सम्पूर्ण अर्थ को
छोड़ देते हैं;
जो एक अंशमात्र दीखता है, हम इसे सम्पूर्ण समझ लेते हैं।
इस प्रकार उन्होंने अपना नाटक रचा है हमें पात्र बना कर :
स्वयं लेखक और अभिनेता ने, स्वयं को दृश्य-समान बना कर,
आत्मापुरुष-रूप में गतिशील हैं, शक्ति-रूप वह प्रकृति देवी हैं।...
यही ग्रन्थि है जो सितारों को आपस में बाँधे रखती है :
ये 'दो परम्', जो एक ही हैं, सम्पूर्ण शक्ति का गुप्त रहस्य हैं,
ये 'दो परम्' जो एक हैं, पदार्थों में सामर्थ्य औ' यथार्थ हैं।
पुरुष की मौन आत्मा, इस संसार औ' प्रकृति का आधारतत्त्व है,
उसके कर्मों में प्रकृति के आदेश लिखे होते हैं।
प्रसन्नचित्त, वह उसके चरणों में निष्क्रिय लेटा रहता है :
उसके ब्रह्माण्डीय नृत्य के लिए अपनी छाती खोल देता है
हमारे जीवन भी उसी नृत्य की कम्पित रंगशाला हैं,
और इसका भार कोई नहीं सह पाता यदि आत्म-बल अन्तर में न होता,
और साथ ही कोई छोड़ भी नहीं पाता, क्योंकि उसका आत्मानन्द साथ है।...
'सावित्री', पृ. ६१-६३

—श्रीअरविन्द

अविभाज्य ऐक्य

एक ही चेतना

माताजी की चेतना और मेरी चेतना के बीच का विरोध पुराने दिनों का आविष्कार था (जिसका कारण मुख्यतया 'क्ष', 'त्र' तथा उस समय के अन्य व्यक्ति थे)। यह विरोध उस समय पैदा हुआ जब आरम्भ में यहाँ रहने वाले लोगों में से कुछ माताजी को पूर्ण रूप से नहीं पहचानते थे या उन्हें स्वीकार नहीं करते थे। और फिर उन्हें पहचान लेने के बाद भी वे इस निरर्थक विरोध पर अड़े रहे और उन्होंने अपने-आपको और दूसरों को बड़ी हानि पहुँचायी। माताजी की और मेरी चेतना एक ही है, एक ही भागवत चेतना दोनों में है, क्योंकि लीला के लिए यह आवश्यक है। माताजी के ज्ञान और उनकी शक्ति के बिना, उनकी चेतना के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति सचमुच उनकी चेतना को अनुभव करता है तो उसे जानना चाहिये कि उसके पीछे मैं उपस्थित हूँ, और यदि वह मुझे अनुभव करता है तो वैसे ही माताजी भी मेरे पीछे उपस्थित होती हैं। यदि इस प्रकार भेद किया जाये (उन लोगों के मन इन चीजों को इतने प्रबल रूप में जो आकार दे देते हैं उन्हें तो मैं एक ओर ही छोड़े देता हूँ), तो भला सत्य अपने-आपको कैसे स्थापित कर सकता है—सत्य की दृष्टि से ऐसा कोई भेद नहीं है।

एक ही शक्ति

क्या आपके कार्य तथा श्रीमाँ के कार्य में कोई अन्तर है—मेरा मतलब है कि शक्ति की प्रभावकारिता में क्या कोई अन्तर है?

नहीं, यह एक ही शक्ति है।

*

निस्सन्देह तुम्हारा यह कहना सही है कि हम एक हैं और जो दिया जाता है वह हम दोनों की ओर से होता है। अगर मैं दूँ तो उसके साथ माताजी की शक्ति भी होती है, अन्यथा साधक कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेगा, और

अगर माताजी देती हैं तो मेरा सहारा उसके साथ होता है और उसके साथ मेरा तथा माताजी का प्रकाश भी होता है। यह एक अविभाज्य क्रिया के दो पहलू हैं, एक पहलू दूसरे को अपने अन्दर समाये रखता है। माताजी की शक्ति ही आगे बढ़ाती है, साथ ही उनकी शान्ति भी बनी रहती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ७९-८०

व्यक्ति को जो कुछ माताजी से प्राप्त होता है, वह मुझसे भी प्राप्त होता है—कोई भेद नहीं है। उसी तरह, अगर मैं कुछ देता हूँ तो वह साधक के पास माताजी की शक्ति के द्वारा जाता है।

एक ही पथ

माताजी की चेतना भागवत 'चेतना' है और उससे जो 'प्रकाश' निकलता है वह भागवत सत्य का प्रकाश है; वे जिस 'शक्ति' को नीचे उतार रही हैं वह भागवत 'सत्य' की शक्ति है। जो माताजी के प्रकाश को ग्रहण करता और स्वीकार करता तथा उसी में निवास करता है, वह सभी स्तरों पर—मानसिक, प्राणिक और भौतिक पर—सत्य को देखना प्रारम्भ कर देगा। जो कुछ अदिव्य है उसका वह त्याग कर देगा; अदिव्य है—मिथ्यात्व, अज्ञान, अन्धकारमयी शक्तियों का प्रमाद; वह सब अदिव्य है जो धुँधला है, जो श्रीमाँ के 'सत्य', उनके प्रकाश और उनकी शक्ति को मानने को अनिच्छुक है। इसी कारण मैं तुमसे हमेशा कहता हूँ कि श्रीमाँ के तथा उनके 'प्रकाश' और उनकी 'शक्ति' के साथ सतत सम्पर्क में बने रहो, क्योंकि तभी तुम अस्तव्यस्तता और अन्धकार से बाहर निकल कर उस 'सत्य' को पा सकते हो जो ऊपर से उतरता है।

जब हम एक विशेष अर्थ में माताजी के 'प्रकाश' अथवा मेरे 'प्रकाश' की चर्चा करते हैं, हम एक विशेष गुह्य क्रिया की बात कर रहे होते हैं—हम अमुक ज्योतियों की बात करते हैं जो अतिमानस से आती हैं।

इस क्रिया में माताजी का सफेद 'प्रकाश' होता है जो पवित्र करता, ज्योतित करता, 'सत्य' के समस्त सारतत्त्व और शक्ति को उतार लाता है और रूपान्तर को सम्भव बनाता है। वस्तुतः जो भी सत्य ऊपर से अवतरित होता है, उच्चतम भागवत 'सत्य' से आता है, वह माताजी का ही सत्य है। श्रीमाँ के पथ और मेरे पथ में कोई अन्तर नहीं है। हमलोगों का पथ एक

है और हमेशा एक ही रहा है, वह पथ जो अतिमानसिक रूपान्तर और भागवत सिद्धि की ओर ले जाता है। न केवल अन्त में, बल्कि आरम्भ से ही एक ही पथ रहा है।

इस तरह के विभाजन और विरोध को रखने का प्रयास करना, यानी श्रीमाँ को एक ओर और मुझे दूसरी ओर—एकदम विपरीत या एकदम भिन्न तरफ—रखना, यह तो हमेशा 'मिथ्यात्व' की शक्तियों की चालाकी रही है जब वे किसी साधक को सत्य तक पहुँचने से रोकना चाहती हैं। अपने मन से इन सभी मिथ्यात्वों को निकाल बाहर करो।

यह जानो कि श्रीमाँ का प्रकाश और शक्ति 'सत्य' का प्रकाश और शक्ति हैं; हमेशा श्रीमाँ के प्रकाश और शक्ति के सम्पर्क में बने रहो, तभी तुम भागवत सत्य में विकसित हो सकते हो।

मैंने पहले भी लिखा है कि माताजी और मेरे बीच भेद करना और यह कहना कि हमारे भिन्न पथ हैं या हमारे भिन्न लक्ष्य हैं—एकदम से भ्रान्तिपूर्ण है। हमारा पथ समान है; हमारा लक्ष्य भी समान है—वह है, अतिमानसिक भगवान्।

श्रीअरविन्द के बारे में जानने या उनसे मिलने से पूर्व श्रीमाँ योग कर रही थीं, और उनकी साधना की रूप-रेखाएँ स्वतन्त्र रूप से किन्तु एक ही नीति का अनुगमन कर रही थीं। जब वे मिले तब उन्होंने साधना को पूर्ण बनाने में एक-दूसरे की सहायता की। जिसे श्रीअरविन्द का योग कहा जाता है वह श्रीअरविन्द और श्रीमाँ का संयुक्त सृजन है। वे अब पूर्ण रूप से तदात्म हैं—आश्रम में साधना तथा समस्त व्यवस्था सीधे श्रीमाँ के द्वारा की जाती है, श्रीअरविन्द पीछे से उन्हें अवलम्ब देते हैं। जो यहाँ योग-साधना के लिए आते हैं उन सबको श्रीमाँ को आत्म-समर्पण करना पड़ता है, और वे हमेशा उनकी सहायता करती हैं तथा उनके आध्यात्मिक जीवन का निर्माण करती हैं।

CWSA ३२, पृ. ८०-८२

कोई हीनतर या कोई महानतर नहीं है

मैं भगवान् को आत्मा के रूप में हर जगह देखता हूँ, और वे मुझे

अपनी ओर खींचते रहते हैं। वे सबकी आत्मा और सबके स्वामी हैं। मुझे लगता है कि वे श्रीमाँ से महानतर हैं। मुझे लगता है कि वे वह भगवान् हैं जिसने मेरे पिता—श्रीअरविन्द—में मूर्त रूप ले लिया है।

यह भगवान् का एक पहलू है—लेकिन आत्मारूपी भगवान् और प्रभु तथा माँ के रूप में भगवान् एक ही हैं—कोई हीनतर या कोई महानतर नहीं है।

यहाँ पर कुछ लोग आपको माताजी से महानतर क्यों मानते हैं? क्या आप दोनों समान स्तर से नहीं हैं? क्या मनुष्य की आँखों पर एक परदा नहीं पड़ा है जो इस तरह के भेद करता है?

ये वे मन हैं जो केवल सतही चीजों को देखते हैं और उनके पीछे क्या है यह नहीं देख पाते।

*

माताजी और मैं एक ही हैं पर दो शरीरों में; यह आवश्यक नहीं है कि दोनों शरीर सदा एक ही काम करें। इसके विपरीत, क्योंकि हम एक ही हैं, एक का ही हस्ताक्षर करना बिल्कुल पर्याप्त है, जिस प्रकार प्रणाम ग्रहण करने या ध्यान कराने के लिए एक का ही नीचे जाना सर्वथा पर्याप्त है।

मैं और श्रीमाँ एक और समान हैं। और साथ ही वे यहाँ परमा हैं और उनका अधिकार है कि वे कार्य के लिए जो उत्तम समझती हैं उस तरह कार्य की व्यवस्था करें। वे जो भी कार्य दें उस पर किसी को अपना अधिकार जमाने, किसी भी तरह का दावा करने या अपना स्वामित्व जताने का हक नहीं। आश्रम माँ की सृष्टि है और उनके बिना इसका कभी अस्तित्व नहीं होता। वे जो कार्य कर रही हैं वह उनका अपना सर्जन है, उन्हें वह दिया नहीं गया है और उनसे वह लिया नहीं जा सकता। अगर तुम्हारे अन्दर श्रीमाँ के साथ उचित सम्बन्ध बनाने और उनके प्रति उचित मनोवृत्ति रखने की इच्छा है तो इस प्राथमिक और मूलभूत सत्य को समझने का प्रयास करो।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ८३

युगों से साथ कार्य कर रहे हैं

कहा जाता है कि आप और श्रीमाँ सृष्टि के प्रारम्भ से ही इस धरती पर विद्यमान हैं। लेकिन लाखों-करोड़ों वर्षों से आप छद्मवेश में क्यों रह रहे हैं? मैं “छद्मवेश” कह रहा हूँ क्योंकि अब, वर्तमान में ही आप जगत् के सम्मुख अपने सच्चे रूप में प्रकट हुए हैं।

हम क्रमविकास को आगे ही आगे बढ़ाये चले जा रहे हैं।

“क्रमविकास को आगे ही आगे बढ़ाये चले जा रहे हैं” वाक्यांश मेरी समझ में नहीं आया। कृपया इसका खुलासा करेंगे?

इसका अर्थ होगा, मानवजाति का समस्त इतिहास लिखना। मैं बस इतना ही कह सकता हूँ कि चूँकि क्रमविकास को अगले स्तर पर उठाने के लिए विशेष अवतरण होते हैं, उसी तरह क्रमविकास के हर स्तर पर धरती को दिशा देने के लिए भगवान् की कोई वस्तु हमेशा उपस्थित रहती है।

मैं समझ सकता हूँ कि पुराकाल में कितने ही सर्वसामान्य व्यक्तियों ने आपकी उपस्थिति को पहचाना नहीं होगा, विशेषकर इस कारण कि बाह्य रूप में आप सामान्य मनुष्य की भाँति रहे। लेकिन यह कैसी बात है कि श्रीकृष्ण, बुद्ध या ईसामसीह ने भी धरती पर आपकी उपस्थिति को नहीं पहचाना?

कहाँ और किसमें उपस्थिति? अगर वे हमसे मिले नहीं तो पहचानेंगे भी नहीं, और अगर मिले भी होते फिर भी हमें इसका कोई कारण नहीं दीखता कि माताजी और मैं इस आवरण को हटा कर—जो हमारे इन व्यक्तित्वों पर पड़ा है—इनके पीछे स्थित भगवान् को प्रकट करें। ऐसे किसी भी उद्देश्य के लिए ये जीवन नहीं बने हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ८८-८९

अगर आप और श्रीमाँ सारे समय पृथिवी पर उपस्थित थे तो इसका

यह अर्थ हुआ कि उन महान् सत्ताओं के अवतरण के समय भी आप यहीं थे। तब, आपका बाहरी आवरण चाहे जो कुछ भी रहा है, आप अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को—सच्ची दिव्यता—को उनसे भला कैसे छिपा सकते थे?

लेकिन, आन्तरिक 'स्व' सभी से छिपा हुआ क्यों नहीं रह सकता भला? तुम्हारे तर्क में केवल तभी कुछ बल होता जब पृथिवी पर अवतारों का आगमन होता, केवल विभूतियों के उतरने पर वह तर्क ठीक नहीं बैठता।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ८९

चूँकि आप और श्रीमाँ आरम्भ से निरन्तर धरती पर थे, तब एक के बाद एक अवतारों के आने की क्या आवश्यकता थी?

हम धरती पर अवतार की भाँति नहीं थे।

आप कहते हैं कि आप दोनों अवतार की भाँति नहीं थे, फिर भी आप क्रमविकास को आगे बढ़ा रहे थे। 'स्वयं' प्रभु पृथिवी पर क्रमविकास को आगे लिये चले जा रहे थे तब फिर अवतारों के उतरने की क्या आवश्यकता थी, जो उन्हीं के अंश थे?

जब कोई विशेष कार्य करना होता है तब अवतार की आवश्यकता होती है। अवतार विशेष अभिव्यक्ति होते हैं जब कि बाकी समय सामान्य मनुष्य के अन्दर विभूति के रूप में भगवान् ही कार्य करते हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ९१

—श्रीअरविन्द

हमारा प्रेम शाश्वत सत्य है।

—श्रीमाँ

When in your heart and thought you will make no difference between Sri Aurobindo, and me, when to think of Sri Aurobindo will be to think of me and to think of me will mean to think of Sri Aurobindo inevitably, when to see one will mean inevitably to see the other, like one and the same Person, — then you will know that you begin to be open to the supramental force and consciousness.




जब तुम अपने हृदय और विचार में मेरे और श्रीअरविन्द के बीच कोई भेद न करोगे, जब अनिवार्य रूप से श्रीअरविन्द के बारे में सोचना मेरे बारे में सोचना हो और मेरे बारे में सोचने का अर्थ हो श्रीअरविन्द के बारे में सोचना, जब एक को देखने का अनिवार्य अर्थ हो दूसरे को उसी एक ही अभिन्न व्यक्ति के रूप में देखना, तब तुम यह जान लोगे कि तुम अतिमानसिक शक्ति और चेतना के प्रति खुलना शुरू कर रहे हो।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १३, पृ. ३३

21-2-68

*The reminiscences will
be short.*

*I came to India to meet Sri Aurobindo.
I remained in India to live with Sri Aurobindo.
When he left his body, I continued to live here
in order to do his work which is, by saving
the Truth and enlightening mankind,
to hasten the rule of The Divine's
Love upon earth.*

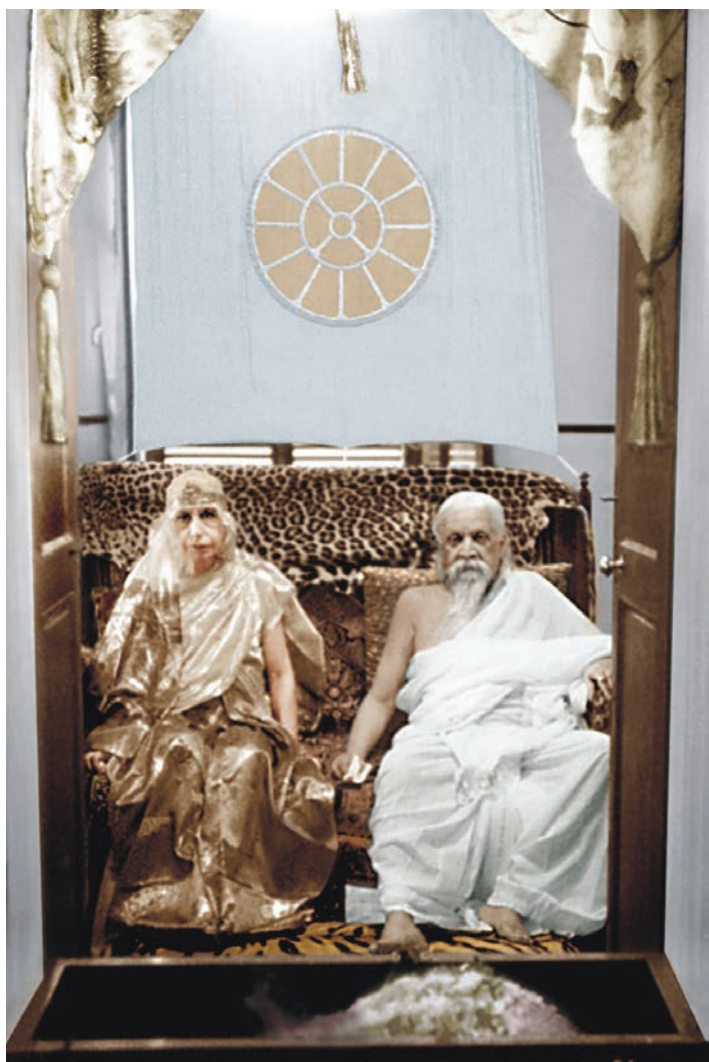


२१ फरवरी १९६८

संस्मरण संक्षिप्त होंगे।

मैं श्रीअरविन्द से मिलने के लिए भारत आयी। मैं श्रीअरविन्द के साथ रहने के लिए भारत में रह गयी। उनके शरीर त्यागने के बाद भी मैं यहाँ रह रही हूँ ताकि उनका काम पूरा करूँ। उनका काम है 'सत्य' की सेवा करके मानवजाति को प्रकाश देते हुए धरती पर 'भागवत प्रेम' के राज्य को जल्दी लाना।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४५



माताजी-श्रीअरविन्द ही मेरा आश्रय हैं।

मानवता का बोझ

श्रीमाँ ने मुझसे तनावरहित और विकाररहित उचित मनोवृत्ति के बारे में कहा है, ऐसी मनोवृत्ति जो सूर्यालोक से भरपूर हो, जो पुष्प की भाँति प्रकाश की ओर खुलती हो। यह सब आप तथा श्रीमाँ जैसी सत्ताओं के लिए बहुत ठीक है, जो अवतार हैं, लेकिन हम बेचारे नश्वर मनुष्यों के पथ-प्रदर्शन के लिए आपका यह अस्पष्ट नुसख़ा किस काम का?

और फिर इस मनोवृत्ति को तो बस सतत प्रार्थना, श्रमसाध्य ध्यान तथा गलत गतियों को अस्वीकारने के निरन्तर प्रयास के अलावा और कैसे पाया जा सकता है भला?

तुम कहते हो कि तुम्हारे लिए यह पथ बहुत कठिन है या तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल नहीं है, साथ ही तुम्हारा यह कहना भी है कि मेरे या माताजी के जैसे “अवतार” ही यह कर सकते हैं। यह बड़ी अजीब-सी भ्रान्त धारणा है; क्योंकि, इसके विपरीत, यह पथ सबसे सरल, सबसे सहज और सबसे ऋजु पथ है, और कोई भी व्यक्ति—अगर वह अपने मन और अपने प्राण को शान्त कर ले—इसका अनुसरण कर सकता है, यहाँ तक कि वे भी जिनके अन्दर तुमसे दसगुनी कम क्षमता है, इसे कर सकते हैं। तनाव, दबाव और घोर परिश्रम का दूसरा पथ सचमुच कठिन होता है और उसमें तपस्या की महान् शक्ति की आवश्यकता होती है। रही बात माताजी और मेरी, तो हमें सभी पथों को आजमाना पड़ा, सभी प्रक्रियाओं का अनुसरण करना पड़ा, कठिनाइयों के पहाड़ों को लाँघना पड़ा, तुमसे या आश्रम अथवा बाहर के किसी भी व्यक्ति से कहीं ज़्यादा भारी बोझ कठिनतम परिस्थितियों में ढोना पड़ा, घाव सहने पड़े, अगम्य दलदलों, तपते रेगिस्तानों और बीहड़ जंगलों से रास्ता निकालना पड़ा, विरोधी शक्तियों की राशि पर विजय पानी पड़ी, मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हमें ऐसे-ऐसे कार्य करने पड़े जैसे हमसे पहले किसी को नहीं करने पड़े। क्योंकि हमारे जैसे कार्य में पथ-प्रदर्शक को न केवल भगवान् को नीचे लाना, उनका प्रतिनिधित्व करना, उन्हें मूर्त रूप देना होता है, बल्कि मानवता के अभीप्सा करने वाले, यानी आरोहणकारी तत्त्व का भी प्रतिनिधित्व करना

होता है, मानवता के बोझ को पूरी तरह से अनुभव करना होता है, मात्र लीला के तौर पर नहीं बल्कि कठोर गाम्भीर्य के साथ जीवन की सभी बाधाओं, मुसीबतों, अड़गों का सामना करना होता है, केवल तभी घोर परिश्रम के साथ पथ पर चलना सम्भव होता है। लेकिन न यह आवश्यक है न सह्य कि हम हमसे पहले आये लोगों की सम्पूर्ण अनुभूति को पहले दोहरायें। चूँकि सम्पूर्ण अनुभूति प्राप्त है इसलिए हम औरों को ऋजु तथा सरल पथ दर्शा सकते हैं—अगर वे इसे अपनाना चाहें तो अपनायें। चूँकि हमने यह अनुभूति बहुत मूल्य देकर पायी है कि हम तुम्हें और दूसरों को प्रेरित कर बलपूर्वक कह सकते हैं कि “चैत्य मनोभाव अपनाओ; ऋजु तथा सूर्यालोकित पथ पकड़ो—भगवान् प्रकट या गुप्त रूप से तुम्हें सहारा दे रहे हैं—अगर गुप्त रूप से भी दे रहे हों तो उचित समय पर वे स्वयं को तुम्हारे सम्मुख प्रकट करेंगे—कठोर, बाधायुक्त, चक्करदार और कठिन पथ अपनाने का आग्रह मत करो।”

CWSA खण्ड ३२, पृ. ९४-९५

कठिनाइयाँ तथा सूर्यालोकित पथ

तुम्हारा यह सोचना बहुत बड़ी भूल है कि सूर्यालोकित पथ की सम्भावना मेरी खोज या मूलतः मेरा आविष्कार है। तीस साल से अधिक अरसे पहले मैंने योग की जो पहली पुस्तकें पढ़ी थीं, उनमें अन्धकार और प्रकाश के पथों की बात थी और सूर्यालोकित पथ को वरतर बता कर उस पर ज़ोर दिया गया था।

अब मैं स्वयं सूर्यालोकित पथ पर काफ़ी आगे बढ़ चला हूँ, और साथ ही मैं कठिनाई, दुःख-दर्द और खतरों से कभी पीछे नहीं हटा हूँ। सभी तरह की कठिनाइयों का पूरा भाग मेरे पल्ले आ चुका है और श्रीमाँ ने तो मुझसे दसगुनी ज़्यादा कठिनाइयाँ झेली हैं! इसका यही कारण है कि पथ खोजने वालों को सभी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है ताकि वे उन पर विजय पा सकें। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जो साधक के सामने मुँह बाये आ खड़ी हो और जिसे पथ पर हमने नहीं झेला हो; कई कठिनाइयों को जीतने से पहले हमें उनसे सौ-सौ बार लोहा लेना पड़ा है (वस्तुतः, यह तो मैं कम करके कह रहा हूँ); कई अभी तक यह कह कर डटी

हुई हैं कि जब तक सम्पूर्ण पूर्णता धरती पर नहीं उतर आती, वे बनी रहेंगी। लेकिन हमने कभी यह स्वीकार नहीं किया है कि दूसरों के लिए भी ये अनिवार्य हैं। वास्तव में दूसरों का पथ सुगम बनाने के लिए हमने वह बोझ अपने कन्धों पर उठा लिया है। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए एक बार माँ ने प्रभु से प्रार्थना की थी कि पथ पर आने वाली सभी कठिनाइयाँ, खतरे, दुःख-दर्द दूसरों पर आने की बजाय उन पर आ जायें। अब तक प्रभु ने उनकी सुनी है; यही कारण है कि जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा उन पर बनाये रखी है उनके सभी दैनन्दिन दुःख-कष्टों को वे बरसों से अपने ऊपर लिये हुए हैं ताकि वे सूर्यालोकित पथ का अनुसरण कर सकें, और जो उस पथ पर भले न चल पायें, लेकिन अपना सारा विश्वास माँ पर बनाये रखें, वे अचानक अपने पथ को आसान पायेंगे; और अगर वह फिर से मुश्किल बन जाये तो उन्हें समझ जाना चाहिये कि अविश्वास, विद्रोह, अभिमान और अन्धकार उन पर हावी हो रहे हैं। सूर्यालोकित पथ कपोल-कल्पना नहीं, सच्चाई है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ९७

श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के द्वारा साधना करना

... मैं यही कह सकता हूँ कि इस योग का अन्तिम लक्ष्य है— अतिमानसिक सत्य को यहाँ उतारना और उसे क्रियान्वित करना। (बाकी सभी उद्देश्य और स्तर प्रारम्भिक और सहायक हैं)। यह मान लिया गया है कि यह कार्य मेरे और माताजी के द्वारा किया जायेगा और इस लक्ष्य को चरितार्थ करने तथा इस सत्य को यहाँ उतारने के लिए साधकों ने हमें स्वीकार किया है और अब उन्हें हमारे पथ-प्रदर्शन में चलना होगा और हमारे ही द्वारा अवतरित होती हुई वस्तु को ग्रहण करना होगा। वे उसे अन्यथा नहीं पा सकते। अगर वे और किसी सत्य का अनुसरण करें या उसे चाहें तो ऐसा करने के लिए वे स्वतन्त्र हैं, लेकिन यहाँ रह कर वे यह नहीं कर सकते, क्योंकि यहाँ वे सफल नहीं होंगे; क्योंकि यहाँ 'भागवत शक्ति' दूसरे किसी लक्ष्य की चरितार्थता के लिए कार्य नहीं कर रही। यह भी देखा गया है कि अगर वे हमारे द्वारा आयी उस 'शक्ति' को अस्वीकार कर दें और किसी दूसरे उद्देश्य का अनुसरण करें तो वे इस पथ से हट

जायेंगे और न हमारी उपस्थिति का, न इस योग का लाभ उठा पायेंगे, और न ही उस महान् कार्य की सामञ्जस्यमय स्वर-संगति में अपना सुर पा सकेंगे जो यहाँ किया जा रहा है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ९८

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की ओर उद्घाटन

हम चाहें श्रीअरविन्द को लिखें या श्रीमाँ को, क्या यह एक ही बात है? कुछ लोग कहते हैं कि दोनों एक ही हैं, इसलिए चाहे हम श्रीअरविन्द को लिखें या माँ को, हम माँ की ओर ही खुले होते हैं। क्या यह ठीक है?

यह सत्य है कि हम दोनों एक ही हैं, पर सम्बन्ध का अस्तित्व भी है, जिसके कारण यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति माताजी की ओर खुला हो।

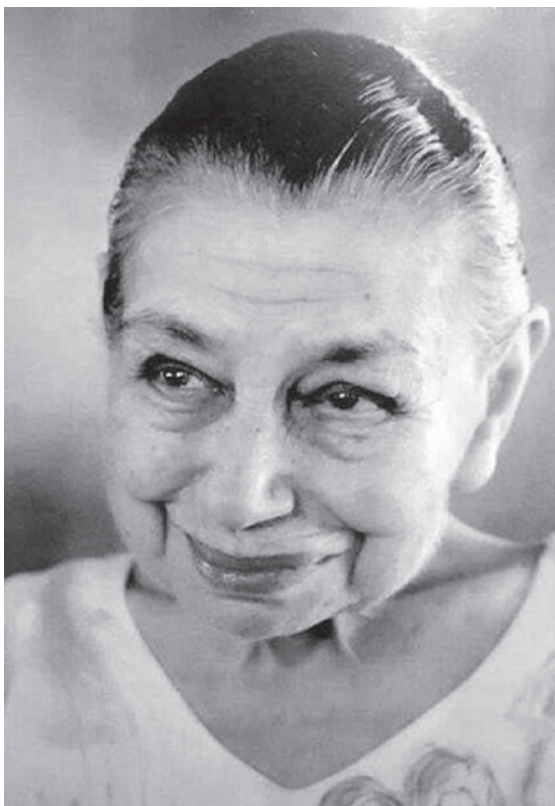
क्या यह हो सकता है कि एक व्यक्ति जो श्रीअरविन्द की ओर खुला है, माँ की ओर खुला न हो? क्या यह बात ठीक है कि जो कोई भी श्रीमाँ की ओर खुला हो, वह श्रीअरविन्द की ओर भी खुला है?

श्रीमाँ के बारे में कथन सही है। यदि कोई श्रीअरविन्द की ओर खुला है, लेकिन माताजी की ओर नहीं, तो उसका अर्थ यह है कि वास्तव में वह श्रीअरविन्द की ओर भी खुला हुआ नहीं है।

प्रायः ही श्रीअरविन्द कहते हैं कि व्यक्ति को श्रीमाँ की शक्ति को शासन करने देना चाहिये। क्या इसका यह अर्थ है कि दोनों की शक्तियों में कुछ भेद है?

केवल एक ही शक्ति है, माताजी की शक्ति—या, यदि तुम इसे यों कहना चाहो, माताजी श्रीअरविन्द की शक्ति हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १०४



श्रीअरविन्द की शक्ति

मैं सिर्फ श्रीअरविन्द की शक्ति हूँ, तथा अपने सभी बच्चों की माता। मेरे बच्चे मेरी चेतना के और मेरी सत्ता के समान रूप से अंश हैं। जब वे रूपान्तरित तथा सिद्ध हो जायेंगे तब सबको मेरे तथा श्रीअरविन्द के प्रत्येक पक्ष को अभिव्यक्त करने का समान अधिकार होगा।

एक सर्वनिष्ठ अभिव्यक्ति की एकजुटता में सबकी एकता ही धरती पर नवीन तथा दिव्य विश्व के सृजन को स्वीकार करेगी। प्रत्येक अपना अंश लायेगा, किन्तु कोई अंश तब तक पूर्ण न होगा जब तक वह समस्त की एकजुटता में एक शक्ति न बन जाये।

श्रीअरविन्द की शक्ति

सन्तुलन लाने के लिए दो रूपों में समान चेतना

... तत्त्वतः हम एक हैं, समान हैं, कोई भेद नहीं है। अभिव्यक्ति में एक दूसरे को सहारा देने के लिए दो रूपों में यह एक और समान चेतना ही है। सृष्टि के सन्तुलन के लिए यह अनिवार्य है... कोई भेद नहीं है। ऐक्य पूर्ण है। यह एकमेव है, अद्वितीय है—एक ही चेतना है। और कभी-कभी, जब कभी आवश्यकता हो, यह ऐक्य अभिव्यक्ति में भी दिखलायी देता है। जब व्यक्ति इस चेतना के प्रति उद्घाटित हो जाता है, वह इस ऐक्य को देखता है। सचमुच यही है... सचमुच व्यक्ति इसे समझा नहीं सकता कि यह क्या है। इसे केवल जिया जा सकता है। एकाग्रचित्त और उद्घाटित रह कर व्यक्ति इस अनुभूति तक पहुँच सकता है। यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी रचना मन से की जा सके। इस क्षेत्र में मन की कोई पहुँच नहीं है।

वस्तुतः, श्रीअरविन्द तथा मैं एक ही हैं, हमारी समान चेतना है। यहाँ नीचे, विभेद है, यह भेद सृष्टि में केवल सन्तुलन लाने के लिए बनाया गया है, अन्यथा हम समान हैं। हम सचमुच एक ही हैं। हाँ, इसकी व्याख्या करना बहुत मुश्किल है। मुझे शब्द नहीं मिल रहे। नहीं, यह सम्भव नहीं है। इसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।...

समझ रहे हो, अभिव्यक्ति के परे सब एकमेव है, कोई भेद नहीं है। एक ही वस्तु है, एक ही चेतना है, पूर्ण एकता है। हमारा पृथक् अस्तित्व नहीं है। लेकिन जब हम यहाँ नीचे उतरते हैं तो प्रतीत होता है कि हमारे भिन्न आकार हैं, हमारा पृथक् अस्तित्व है, जब आवश्यक हो, हम एकरूप हो जाते हैं। कभी वे मुझसे एकात्म हो जाते हैं, साथ ही, ब्रह्माण्ड में भी वे सर्वत्र होते हैं। वे यहाँ मेरे अन्तर में आसीन हैं। वे मुझसे बातें करते हैं। वे मुझसे तदात्म हो जाते हैं। और कभी-कभी वे मुझसे पृथक् होते हैं और मुझसे पृथक् अस्तित्व में जीते हैं। साथ ही, वे मेरे अन्तरस्थ हैं। लेकिन प्रतीयमान रूप में, वे मुझसे भिन्न हैं। यह एक क्रीडा है जो क्रियारत है : कभी वे मेरे साथ एकात्म हो जाते हैं तो कभी वे स्वयं को अभिव्यक्ति में प्रक्षिप्त कर देते हैं। वे यहाँ हैं (श्रीमाँ अपने शरीर की ओर इंगित करती

हैं), वे यहाँ हैं, वे विश्व में सर्वत्र हैं। वे विश्व में पायी जाने वाली प्रत्येक वस्तु में हैं। कभी वे स्वयं को प्रकट करते हैं तो कभी छिपे रहते हैं और व्यक्ति 'उन्हें' कहीं नहीं देख पाता। इसी तरह वे सृष्टि को बनाये रखते हैं। एक बार सृष्टि के साथ एक हो जाते हैं तो दूसरी बार—जब कभी आवश्यकता हो—उससे अलग हो जाते हैं। दोनों चीजें आपस में मिली-जुली हैं, और किसी कारणवश, किसी लक्ष्य को साधित करने के लिए वे अपनी क्रियाएँ निर्धारित करते हैं। वे एक ही समय यहाँ भी हैं, वहाँ भी हैं। वे... नहीं, इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। इसके लिए शब्द ही नहीं हैं, तुम मन से नहीं समझ सकते कि यह क्या है।

श्रीअरविन्द सर्वत्र हैं

जानते हो, जब उन्होंने शरीर छोड़ा, ...वे अपना शरीर त्यागना चाहते थे, उनका शरीर ५ से ९ दिसम्बर तक यहीं रहा... उस समय वे अकल्पनीय चेतना से सराबोर थे। वह चेतना की गतिशील क्रिया थी जो उनके शरीर से विकीरित हो रही थी। वह इतनी ठोस थी, इतनी भौतिक, कि 'उनके' अन्दर सब कुछ अलौकिक शक्ति के साथ स्पन्दित हो रहा था। यह चीज इतने ठोस रूप में प्रत्यक्ष थी... उस समय मैं श्रीअरविन्द के समीप थी और मैं देख रही थी कि श्रीअरविन्द की चेतना उनसे निकल कर सीधी मेरे अन्दर आ रही थी, इस तरह—भौतिक रूप में। यह एक विलक्षण क्रिया थी। मैं उनकी चेतना को अपने रोम-रोम में एक घर्षण के साथ प्रवेश करते हुए अनुभव कर रही थी। वह इतनी ठोस थी, इतनी तीव्र थी, एकदम से भौतिक, जिसे मैं बाहरी रूप से भी अनुभव कर सकती थी, उनकी सम्पूर्ण चेतना ने मेरे अन्दर प्रवेश कर लिया, क्योंकि वह समान चेतना है।

प्रयाण करने से पहले उन्होंने सब कुछ मुझे दे दिया। सब कुछ, बिना बचाये सब कुछ, साथ में था पूर्ण आत्म-त्याग, मानों उनकी समस्त चेतना मेरे अन्दर विलीन हो गयी। और यह क्रिया घण्टों पर घण्टे चलती रही। मैं इसका वर्णन नहीं कर सकती... वे मेरे लिए सब कुछ छोड़ गये।

हाँ, यह भौतिक शरीर ही सीमित है, जो बँधा हुआ है और जो मुक्त क्रीडा करने नहीं देता। एक बार चेतना इसमें (शरीर में) प्रवेश कर जाती

है तो वह पूरी तरह से इस भौतिक रूप के चौखटे में बन्द हो जाती है। लेकिन वे, वे सर्वत्र हैं। वे यहाँ मेरे अन्तर में हैं, साथ ही विश्व में भी सर्वत्र हैं। वे मुझसे बातें करते हैं। मैं उनसे बातें पूछती हूँ और वे उत्तर देते हैं। हमारा वार्तालाप होता है और समान समय पर, जब कभी आवश्यकता हो, वे भिन्न-भिन्न स्थलों पर दूसरों से भी बातचीत करते हैं। हम जगत् के भाग्य का, मानवता की नियति का, भविष्य में क्या-क्या होगा, अगले पड़ाव के लिए क्या आवश्यक है—इत्यादि चीजों का निश्चय करते हैं। यह सब हमारे निर्णय के आधीन होता है।

उनकी उपस्थिति सब जगह है, जहाँ कहीं व्यक्ति को उनकी आवश्यकता हो वे उपस्थित रहते हैं। सर्वत्र, सर्वत्र। वे मेरे साथ एकात्म हैं, साथ ही वे विभिन्न स्थलों पर भी हैं। वे सीमित नहीं हैं, मात्र भौतिक शरीर सीमित होता है, सूक्ष्म-भौतिक नहीं। सूक्ष्म-भौतिक सभी चीजों में प्रवेश कर सकता है और सब जगह जा सकता है। वह शरीर से बँधा हुआ नहीं होता। यही (शरीर) सीमा बाँधता है। मन की पकड़ में यह बात नहीं आ सकती। इसको तुम अपने मन से नहीं समझ सकते। मन समझा नहीं सकता, उसके पास इसे समझाने का कोई साधन नहीं है। बस अनुभूति द्वारा... मेरे बच्चे, समान ही समान को पहचान सकता है, इसलिए इसे जानने के लिए कि यह क्या है, 'एकमेव' की इस अभिन्न चेतना की अनुभूति पाने के लिए व्यक्ति को उसी चेतना तक उठना होगा।...

हाँ, हमेशा यही होता है—सतत रूप से पूर्ण तादात्म्य और साथ ही बाहर की ओर क्रिया... यानी, एक ही समय, सर्वत्र। प्रतिक्षण यह हो रहा है। जिनके पास दृष्टि है, वे इसे देख सकते हैं। यह चैत्य दृष्टि है।

कार्य समान है

माँ, श्रीअरविन्द के बारे में जानने से पहले क्या आपका उनके साथ कोई सम्पर्क था? क्योंकि मैंने कुछ किताबों में पढ़ा है कि उन्होंने और आपने करीब-करीब समान कार्य किया है।

कार्य समान था, समान है, क्योंकि उनकी और मेरी अन्तःप्रेरणा का स्रोत समान है : 'परम'।

Blessings of the Grace, पृ. ९८-१०२

आप हमारे अन्दर विराजमान हैं

माँ, श्रीअरविन्द ने हमेशा कहा है कि आप, आप हमारे अन्दर विराजमान रहती हैं।

हाँ, यह सच है, एकदम सही है।

मैं, वहाँ शाश्वत लौ में ‘उपस्थिति’ के रूप में हूँ, वह ‘शक्ति’ हूँ जो क्रिया का सूत्रपात तथा सञ्चालन करती है। वह ‘शान्ति’ हूँ जो सभी चीज़ों को मधुरता तथा अचञ्चलता प्रदान करती है, वह ‘परमोल्लास’ हूँ जो उफनता है, उदात्त बनाता है, वह ‘प्रकाश’ हूँ जो पवित्र तथा शुद्ध करता है, और हूँ वह ‘स्पन्दन’ जो समर्थन करता, अनुमति देता है।

श्रीअरविन्द ऐसी ‘सत्ता’ के रूप में उपस्थित हैं जो सबको धारण किये हुए है और मैं वहाँ ‘पथ-प्रदर्शन’ के रूप में विद्यमान हूँ। वस्तुतः, दृश्यमान रूप में हम दो हैं, लेकिन वास्तव में अभिन्न हैं। एक है साक्षी अथवा द्रष्टा, तथा दूसरी है शक्ति।

जब तक तुम इस सत्य को उपलब्ध नहीं कर लेते, तुम कुछ नहीं समझ सकते। बहरहाल, उनके प्रति तुम्हारी कृतज्ञता को भली-भाँति स्वीकार कर लिया गया है। उन्होंने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली है और मैं तुम्हें अपने आशीर्वाद प्रदान कर रही हूँ।

हाँ, मेरे बच्चे, जिसने श्रीअरविन्द तथा मुझे सच्चे अर्थों में पहचान लिया है—वस्तुतः यह एक ही चीज़ है, हमारी समान पहचान है—उसके लिए सभी बाधाएँ, सभी मुसीबतें, सभी जाल, ‘सत्य’ के पथ पर आने वाली सभी रुकावटें बह जाती हैं, उन्हें हमेशा के लिए उसके रास्ते से हटा दिया जाता है—न केवल इस जन्म में, बल्कि मृत्यु के बाद तथा आने वाले सभी जन्मों के लिए—यानी शाश्वत काल के लिए सभी विघ्न-बाधाएँ उसके पथ से बीन ली जाती हैं।

हाँ, उसके लिए, ‘प्रभु’ सर्वसमर्थ हैं। उसे बस दोहराते जाना है : “माँ—श्रीअरविन्द, माँ—श्रीअरविन्द”... बस यही पर्याप्त है। (ध्यान)

मोना की पुस्तक *The Supreme* से

‘उनके बिना मेरा अस्तित्व नहीं है; मेरे बिना, वे अनभिव्यक्त हैं।’—श्रीमाँ

मैं कार्य के लिए बनी रही

ऊपर से क्रिया करके, व्यक्ति यहाँ की सभी चीज़ों को अपने वश में रख सकता है, उन्हें उनके सही स्थान पर बिठा सकता है, अप्रिय चीज़ों के प्रारम्भ को रोक सकता है, लेकिन इस सबका अर्थ... रूपान्तर नहीं है। रूपान्तर का अर्थ है, वस्तुओं को सचमुच बदल देना।

व्यक्ति कौशल भी प्राप्त कर सकता है। ऊपर से यह सब करना काफ़ी आसान है। लेकिन रूपान्तर के लिए नीचे उतरना ही होगा, और यह भयंकर होता है... अगर अवतरण न हो तो अवचेतना कभी, कभी भी रूपान्तरित नहीं होगी, वह जैसी की वैसी ही बनी रहेगी।...

अगर कार्य की माँग नहीं होती तो मैं श्रीअरविन्द के साथ ही प्रयाण कर जाती; समझ रहे हो न? मैं केवल कार्य के लिए यहाँ बनी रही—क्योंकि कार्य को सम्पन्न करना ही था और उन्होंने मुझसे कार्य जारी रखने को कहा, और मैं वही कर रही हूँ... अन्यथा, जब व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से सचेतन होता है, अपने शरीर से बँधा नहीं होता, तब वह एक साथ सौ भिन्न स्थानों पर सौ भिन्न व्यक्तियों से मिल सकता है, ठीक उसी तरह जैसा कि अब श्रीअरविन्द कर रहे हैं।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

१८ फ़रवरी १९६१

कोशाणुओं का हर्ष श्रीअरविन्द से तदात्म होना चाहता है

कुछ महीने पहले, जब यह शरीर एक बार फिर से युद्धक्षेत्र बन गया था और हर तरह की बाधाओं का सामना कर रहा था, जब यह अधर-सा था, अपने-आपसे पृष्ठ रहा था... जब बौद्धिक रूप से भटक नहीं रहा था, लेकिन किसी प्रत्यक्ष ज्ञान की माँग कर रहा था, किसी ठोस वस्तु का स्पर्श करना चाहता था : इसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह किस दिशा की ओर बढ़ रहा है, चीज़ें क्या रूप लेने वाली हैं, कि अचानक, सभी कोशाणुओं में यह भावना भर गयी (और मैं जानती हूँ कि यह कहाँ से आयी) : 'अगर हम शरीररूपी इस एकीकरण से विघटित हो जायें, अगर यह संचयन बिखर जाये, शारीरिक सीमा हट जाये तो हम सभी कोशाणु एकदम सीधे, तीर की तरह सीधे, ऊपर निकल जायेंगे'—और यह एक अद्भुत अग्निशिखा थी—'यह श्रीअरविन्द को उनके अतिमानसिक जगत्

में मिलने के लिए सीधी ऊपर की ओर भभक उठी, वह लोक ठीक हमारे द्वार पर स्थित है।' कितना अपूर्व आनन्द था! सभी कोशाणुओं से कितना उत्साह, कितना हर्ष उफन-उफन कर बह रहा था! उन्हें एकदम से कोई परवाह नहीं थी कि वे संगठित रहें या बिखर जायें... 'ओह,' वे अनुभव कर रहे थे, 'कुछ भी हो जाये तो क्या!' शरीर के प्रबोधन के कार्य के लिए यह सचमुच एक निर्णायक कदम था। सभी कोशाणु अपने अन्दर ऐसी अलौकिक शक्ति का अनुभव कर रहे थे कि वह जड़मति शक्ति, जो उन्हें हमेशा विलीन और विघटित करने के प्रयास में लगी रहती है—जिसे मृत्यु कहा जाता है, उसके प्रति वे एकदम उदासीन हो गये। बोले : 'हमें किसी की क्या परवाह? हम वहाँ जायेंगे और सचेतन रूप से श्रीअरविन्द के कार्य में भाग लेंगे; धरती को रूपान्तरित करने के कार्य में, एक या दूसरे तरीके से, यहाँ, वहाँ, इस तरह, उस तरह—उससे कुछ आता-जाता नहीं—हम तो बस उनके कार्य में तन-मन से हिस्सा लेंगे!...'।

और यही वह समय था जब मुझे परम पुरुष से 'आदेश' मिला, जो ठीक यहीं थे, मेरे इतने निकट (*श्रीमाँ अपने चेहरे पर हाथों से दबाव डालती हैं*)। उन्होंने मुझसे कहा, 'यही प्रतिज्ञा की गयी है। अब **कार्य** को सम्पन्न करना ही है।'

उनका मतलब वैयक्तिक नहीं बल्कि सामूहिक कार्य से था। अतः, स्वाभाविक रूप से, जिस भाँति वह आदेश आया, उसे आनन्द के साथ ग्रहण किया गया और तुरन्त कार्य में उतारा गया।...

श्रीअरविन्द ने शरीर त्याग कर जो कार्य किया वह लगभग इसी के तुल्य है, यद्यपि वह कहीं अधिक पूर्ण, यथार्थ और निरपेक्ष था—क्योंकि उन्हें वह अनुभूति हुई थी, उन्हें प्रत्यक्ष, ठोस रूप में वह अनुभूति हुई थी; मैंने उन्हें देखा, मैंने उन्हें उनके बिस्तर पर अतिमानसिक रूप में देखा।

उन्होंने लिखा है : मैं इसे व्यक्तिगत रूप से, यानी अपने लिए नहीं बल्कि सारे संसार के लिए कर रहा हूँ। और मेरे लिए भी एकदम से यही बात थी—ओह, वह अनुभूति! उसके बाद मेरे लिए किसी चीज का कोई मूल्य नहीं था : मनुष्य, यह पृथिवी—यहाँ तक कि इस पृथिवी का भी मेरे लिए एकदम से कोई महत्त्व नहीं रहा।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

१५ जुलाई १९६१

श्रीमाँ की शरण लो

इस योग के दो महान् चरणों में से एक

श्रीमाँ श्रीअरविन्द^१ की शिष्या नहीं हैं। उन्हें मेरे समान ही सिद्धि और अनुभूति प्राप्त थी।

श्रीमाँ की साधना छोटी उम्र से ही आरम्भ हो गयी थी। जब वे १२ या १३ वर्ष की थीं तब प्रत्येक सन्ध्या अनेक गुरु उन्हें विविध आध्यात्मिक साधना सिखाने के लिए आते। उनमें से एक साँवली एशियाई आकृति थी। जब हम पहले पहल मिले, तब उन्होंने तुरन्त साँवली एशियाई आकृति के रूप में मुझे पहचान लिया जिसे वे बहुत पहले देखा करती थीं। श्रीमाँ यहाँ आयें और एक समान लक्ष्य के लिए मेरे साथ कार्य करें, यह मानों एक भागवत विधान था। भारत आने के पहले ही श्रीमाँ बौद्ध योग और गीता-योग में सिद्धि प्राप्त कर चुकी थीं। उनका योग एक भव्य समन्वय की ओर बढ़ रहा था। उसके बाद यह स्वाभाविक था कि वे यहाँ आयें। मेरे योग को ठोस रूप देने में वे सहायता कर चुकी हैं और कर रही हैं। उनके सहयोग के बिना यह सम्भव नहीं हो पाता।

इस योग के दो बड़े चरणों में से एक है, श्रीमाँ^२ की शरण में जाना।

माँ का सच्चा बालक बनने की कोशिश करो

तुम माँ के बच्चे हो और माँ का अपने बच्चों के प्रति प्रेम असीम होता है, और वे उनके स्वभाव के दोषों को बड़े धीरज के साथ सहती रहती हैं। श्रीमाँ का सच्चा बालक बनने की कोशिश करो: वह बच्चा तुम्हारे अन्दर ही है, लेकिन तुम्हारा बाहरी मन छोटी-छोटी, तुच्छ चीजों में इतना रमा रहता है, बहुधा बात का इतना उग्र बतंगड़ बना देता है कि तुम झाँक कर अपने अन्दर देखते ही नहीं! तुम्हें श्रीमाँ को न केवल सपने में देखना चाहिये बल्कि सारे समय उन्हें अपने अन्दर देखना और अनुभव

१. यह पत्रांश श्रीअरविन्द ने किसी से कह कर लिखवाया था, इसी कारण वे स्वयं को तीसरे पुरुष में सम्बोधित कर रहे हैं।

२. बाद में किसी अवसर पर जब श्रीअरविन्द से पूछा गया कि दूसरा महान् चरण क्या है, उन्होंने उत्तर दिया, “भागवत जीवन के लिए साधक की अभीप्सा।”

करना सीखना चाहिये। तब तुम अपने-आप पर संयम पाने और स्वयं को बदलने में आसानी का अनुभव करोगे—क्योंकि अन्तर में विद्यमान ‘वे’ तुम्हारे लिए इसे करने में तुम्हारी सहायता करेंगी।

साधक को जब श्रीमाँ की उपस्थिति का अनुभव नहीं होता, वह अकेला अनुभव करता है, दुःख पाता है। उसी तरह क्या बच्चे की अनुपस्थिति में माँ भी उसी तरह अकेलेपन का अनुभव करती हैं? क्या वे मानव-माँ से कहीं ज्यादा दुःखी हो जाती हैं?

अगर ऐसा होता तो माताजी सारे समय हज़ारगुने दुःख की अवस्था में बनी रहतीं—क्यों वे बस साधक के लिए दुःखी हों—उस प्रत्येक अन्तरात्मा के लिए भला क्यों दुःखी न हों जो ‘अज्ञान’ में भटक रही है? बालक को उदास और दयनीय होने की आवश्यकता नहीं, उसे तो जब-जब माँ पुकारें, उनके पास दौड़ कर वापिस आने की ज़रूरत है।

आन्तरिक निकटता और भौतिक सामीप्य

वे माँ के बालक हैं और उनके सबसे निकट हैं जो उनकी ओर उद्घाटित हैं, अपनी आन्तरिक सत्ता में उनके समीप हैं, उनकी इच्छा के साथ एक हैं—वे नहीं जो भौतिक रूप से उनके सबसे निकट हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४५२-५३, ४९६

आपने एक बार लिखा था : “वे माँ के बालक हैं और उनके सबसे निकट हैं जो उनकी ओर उद्घाटित हैं, अपनी आन्तरिक सत्ता में उनके समीप हैं, उनकी इच्छा के साथ एक हैं—वे नहीं जो भौतिक रूप से उनके सबसे निकट हैं।” मैं इसमें निहित सत्य का खण्डन नहीं करता। लेकिन तब माँ ने शरीर-धारण क्यों किया और हम यहाँ पाण्डिचैरी में क्यों हैं? हमारा आन्तरिक सम्पर्क कहीं भी हो सकता है, यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।

माताजी ने भौतिक प्रकृति के कार्य के लिए शरीर धारण किया है (उसमें भौतिक जगत् के बदलने का भी कार्य है)। वे धरती पर लोगों के साथ

“भौतिक सम्बन्ध” बनाने नहीं आयी हैं, वे जगज्जननी हैं। कुछ यहाँ उनके कार्य में हिस्सा लेने आये हैं, कुछ को उन्होंने बुलाया है, अन्य प्रकाश की खोज में आये हैं। हर एक के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध है या वैयक्तिक सम्बन्ध बनाने की आशा है; लेकिन प्रत्येक का उनके साथ सम्बन्ध अनूठा है और कोई यह नहीं कह सकता कि उन्हें प्रत्येक के साथ एक-जैसा ही बर्ताव करना चाहिये। कोई यह दावा नहीं कर सकता कि भौतिक रूप से उन्हें उसके निकट होना चाहिये क्योंकि वे दूसरे भौतिक रूप से उनके बहुत निकट रहते हैं। कइयों के साथ उनका आत्मीय सम्बन्ध है, फिर भी वे उनसे बहुत कम मिलती हैं—कइयों के साथ उनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, फिर भी किसी-न-किसी कारणवश वे उनसे अधिक समय के लिए मिलती हैं। यहाँ इस भौतिक मन के हास्यास्पद गणित के नियमों को लागू करना मूर्खता है—तुम्हारा भौतिक मन माताजी के कार्य को समझ नहीं सकता, और अगर तुम अपनी व्यक्तिगत प्राणिक माँगों और कामनाओं को उनके आगे रखो कि उन्हें इन्हें पूरा करना ही चाहिये, तो यह बहुत ही बुरा है। तब तो तुम आध्यात्मिक विनाश के कगार पर जा पहुँचोगे। श्रीमाँ हर एक के साथ उसके लिए जो उचित हो, उसके हिसाब से क्रिया करती हैं। CWSA खण्ड ३२, पृ. ५०९

माताजी तथा मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ होती है

तुम्हारे लिए माताजी तथा मेरी सहायता हमेशा रहती है। तुम्हें बस पूरी तरह से उसके प्रति खुलना है और वह तुम्हारे ऊपर क्रिया करेगी। जो हो रहा है वह यह है कि तुम्हारे अन्दर अपनी अयोग्यता के गलत विचार उठ रहे हैं, ये विचार कि तुम्हारे अन्दर बुरी चीज़ें हैं जो तुम्हें श्रीमाँ की कृपा को ग्रहण करने से रोक रही हैं, कि तुम्हारे अन्दर अभीप्सा की कमी ही तुम्हें उपलब्धि और अनुभूति को पाने से रोक रही है। ये विचार एकदम से गलत और असत्य हैं, ये तुम्हारे अपने विचार भी नहीं हैं, ये तुम्हारे ऊपर फेंके गये सुझाव हैं, ठीक उसी तरह जैसे ये दूसरे साधकों पर भी फेंके जाते हैं तथा साधकों को उदासी में डुबो देते हैं। कोई अयोग्यता नहीं है, तुम्हारे अन्दर की कोई भी बुरी चीज़ ऊपर नहीं आयी है, अभीप्सा की कोई कमी नहीं है कि वह अनुभूति को रोक दे। उदासी, अपने ऊपर अविश्वास,

निराशा में डूब जाने की तत्परता—बस ये ही चीज़ें इसका कारण हैं, और कोई कारण नहीं है। जैसा कि मैंने तुम्हें लिखा, सभी साधकों के अन्दर, भले वे उत्तम या सबसे अधिक बलवान् क्यों न हों, साधना के प्रवाह में ये सभी बाधाएँ आती ही हैं। और यह कोई वजह नहीं कि इसके कारण वे अपने-आपको अयोग्य समझें और इस विचार के साथ यहाँ से चले जाना चाहें कि उनके लिए कोई आशा नहीं है। थोड़ी-सी अचञ्चलता प्रवाह को वापिस ले आयेगी। तुम्हें आवश्यक अनुभूतियाँ प्राप्त हो रही थीं, तुम्हारी आवश्यक प्रगति हो रही थी, बस, चूँकि तुम्हारी भौतिक चेतना में कुछ कठिनाइयाँ आ खड़ी हुईं कि तुम उदासी में डूब गये, तुम्हें अनुभूतियाँ होनी बन्द हो गयीं। जैसा कि मैंने तुम्हें समझाया, ऐसा सभी के साथ होता है, यह विशेष रूप से तुम्हारे ही साथ नहीं हुआ। साधना-पथ पर ये कठिनाइयाँ हमेशा आती रहती हैं और इन पर तुम्हें विजय प्राप्त करनी होगी। ‘शक्ति’ की क्रिया के द्वारा एक बार इन पर विजय पा लेने के बाद साधना पहले की तरह चल पड़ती है। लेकिन तुमने इस गलत विचार को पनपने दिया कि तुम अयोग्य हो, तुम्हारे अन्दर अभीप्सा का अभाव है, इत्यादि-इत्यादि; और इसी चीज ने तुम्हें बुरी तरह से उदासी के चक्रव्यूह में फँसा दिया। किसी भी साधक को कभी भी अयोग्यता के और निराशाजनक विचारों को नहीं पोसना चाहिये—ये एकदम से असंगत होते हैं, क्योंकि व्यक्ति की निजी योग्यता तथा गुण उसे सफल नहीं बनाते बल्कि श्रीमाँ की कृपा, उनकी शक्ति तथा उस कृपा के प्रति अन्तरात्मा की स्वीकृति तथा माँ की परमा शक्ति की उसके अन्दर क्रिया ही साधक को सफल बनाती हैं।

अन्धकार-भरे इन सभी विचारों से मुँह मोड़ लो और केवल माँ की ओर ताको, परिणाम तथा अपनी इच्छा की सफलता के लिए अधीर मत बनो, बल्कि श्रद्धा और विश्वास के साथ माँ को पुकारो, उनकी क्रिया को अपने अन्दर शान्ति लाने दो और प्रार्थना करो कि चैत्य उद्घाटन तथा उपलब्धि के लिए तुम्हारी प्यास कभी न बुझने पाये। यह चीज़ निश्चित रूप से उस पूर्ण श्रद्धा तथा प्रेम को ले आयेगी जिसे तुम खोज रहे हो।

दो सम्भावनाएँ, आध्यात्मिक प्रगति तथा बाहरी अवस्थाएँ

दो सम्भावनाएँ हैं, एक है, व्यक्तिगत प्रयास के द्वारा आत्म-शुद्धीकरण,

जिसमें बहुत समय लगता है, दूसरी है, 'भागवत कृपा' का हस्तक्षेप जो सामान्यतः तेज़ी से क्रिया करती है। दूसरी सम्भावना के लिए पूर्ण समर्पण तथा आत्मदान आवश्यक हैं, और इसके लिए भी एक ऐसे मन का होना ज़रूरी है जो शान्त रह सके और 'भागवत शक्ति' को क्रिया करने दे, यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति हर कदम पर उसी 'शक्ति' से चिपका रहे, और वह न कर सके तो बस शान्त और अचञ्चल रह कर उसे ग्रहण करे। यह अन्तिम अवस्था बिल्ली के बच्चे जैसी है जिसके बारे में रामकृष्ण बतलाते हैं, लेकिन इस प्रवृत्ति को अपनाना मुश्किल होता है। जो लोग अपने सभी क्रिया-कलापों में विचारों तथा इच्छाओं की सतत सक्रियता में बने रहते हैं उनके लिए मन को नीरव बनाना और मानसिक रूप से आत्मदान करने में बड़ी कठिनाई होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे योग-साधना नहीं कर सकते या आत्मदान करने में सक्षम नहीं होते—बस उनके लिए आत्म-शुद्धीकरण और आत्मदान में अधिक समय लगता है। व्यक्ति के अन्दर अन्त तक जाने के लिए धीरज तथा अटल अध्यवसाय और दृढ़ निश्चय होना चाहिये।

आन्तरिक आध्यात्मिक प्रगति बाहरी अवस्थाओं पर इतनी निर्भर नहीं करती जितनी इस पर करती है कि आन्तरिक रूप से उनके प्रति हमारी कैसी प्रतिक्रिया होती है—समस्त आध्यात्मिक अनुभूति का यही सार है। यही कारण है कि हम उचित मनोभाव को अपनाने और उस पर दृढ़ता के साथ लगे रहने पर जोर देते हैं, साधक ऐसी आन्तरिक अवस्था को धारण करे जो बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर न हो, वह समानता तथा अचञ्चलता की अवस्था हो, अगर वह आन्तरिक प्रसन्नता न पा सके तो उसे अधिकाधिक अपने अन्दर जाना होगा और अन्दर से बाहर की ओर देखना होगा, यह नहीं कि वह सतही मानसिक अवस्था में बना रहे जो जीवन के आघातों और धक्कों की दया पर जीती है। केवल इसी आन्तरिक अवस्था को अपना कर साधक सामान्य जीवन से लोहा ले सकता है, विक्षुब्ध करने वाली शक्तियों का सामना करके उन्हें जीतने की आशा कर सकता है।

अन्दर से शान्त रहना, राह पर आगे ही आगे बढ़ते रहने का दृढ़ संकल्प रखना, कठिनाइयों तथा उतार-चढ़ावों से कभी विक्षुब्ध तथा हतोत्साह न

होना—यह है पथ पर सीखने वाले पाठों में से एक। वरना साधक अपनी चेतना में अस्थिरता को आश्रय देगा और उस कठिनाई को झेलेगा जिसकी शिकायत तुम कर रहे हो। अगर तुम अन्दर से शान्त तथा स्थिर बने रहो केवल तभी अनुभूति की शृंखला कुछ स्थिरता के साथ बनी रह सकती है—हालाँकि ऐसा कभी नहीं होता कि साधना में उतार-चढ़ाव तथा बाधाओं के काल नहीं आयें; लेकिन, अगर तुम साधना में सही तरीका अपनाओ तो आत्मसात् करने के काल बढ़ जायेंगे और कठिनाई के काल कम होते जायेंगे। मुख्य बात है कि अपने चारों ओर आध्यात्मिक वातावरण बनाओ; अगर व्यक्ति इतना कर सके तो वह अपना निजी आध्यात्मिक घेरा बना सकता है जिसमें वह साँस ले सकता और जी सकता है।

माँ की उपस्थिति तथा शक्ति को पुकारो

इस योग में सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि तुम प्रभाव के प्रति खुल सकते हो या नहीं। अगर तुम्हारी अभीप्सा में सच्चाई है और सभी संकटों के बावजूद तुम्हारे अन्दर उच्चतर चेतना तक पहुँचने का धीरज है, तो एक या दूसरे रूप में उद्घाटन होकर रहेगा। लेकिन मन, हृदय तथा शरीर की प्रस्तुति या अप्रस्तुति के अनुसार कम या ज़्यादा समय लग सकता है; इसलिए अगर तुम्हारे अन्दर आवश्यक धीरज न हो तो हो सकता है कि शुरू में ही तुम प्रयास छोड़ बैठो। इस योग में इसके अलावा और कोई तरीका नहीं है कि तुम एकाग्र होओ, ज़्यादा अच्छा है कि हृदय में एकाग्र होओ और माँ की उपस्थिति तथा उनकी शक्ति को पुकारो कि वे तुम्हारी सत्ता को अपने हाथों में ले कर, उस पर अपनी शक्ति की क्रिया कर, तुम्हारी चेतना का रूपान्तरण कर दें; तुम सिर में या भौहों के बीच भी एकाग्र हो सकते हो, लेकिन बहुतों के लिए यह उद्घाटन बहुत कठिन होता है। जब मन शान्त हो जाता है और एकाग्रता प्रबल तथा अभीप्सा तीव्र, तब अनुभूतियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। अभीप्सा जितनी अधिक हो, परिणाम उतनी तेज़ी से आयेंगे। बाकी सब चीज़ों के लिए तुम्हें केवल अपने प्रयासों पर निर्भर नहीं रहना है, बल्कि बस 'प्रभु' के साथ दृढ़ सम्पर्क बनाना तथा माँ की 'शक्ति' तथा 'उपस्थिति' के प्रति ग्रहणशील होना है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ३४-३५, ८३, १४०



जगज्जननी से आशीर्वाद-पुष्प ग्रहण करते हुए रवीन्द्रजी

पुरोधा

(अप्रैल अंक का 'पुरोधा' का हिस्सा श्री रवीन्द्रजी की जन्म-शताब्दी—२६ जनवरी २०१७—पर उनको समर्पित है। इसमें उनके देहावसान—२४ अगस्त २००१—पर लिखे कुछ श्रद्धाञ्जलि-लेखों के साथ-साथ उनकी जन्म-शताब्दी पर हुई कक्षा की गोष्ठियों में अर्चना-दी तथा कनिष्ठाजी द्वारा लिखे गये नूतन लेखों का भी समावेश है।

कक्षा की गोष्ठियों में पहले दो दिन श्री गोपाल डालमिया ने—जो हमारे शिक्षाकेन्द्र के भूतपूर्व छात्र तथा रवीन्द्रजी के हिन्दी के प्रिय छात्र रह चुके हैं—उनके कई चित्रों के साथ एक 'वीडिओ प्रोजेक्शन' भी किया। साथ ही उन्होंने उनके बारे में मज़ेदार घटनाएँ भी सुनायीं जिनमें से कुछ का ज़िक्र विभिन्न लेखों में आयेगा। —सं.)

‘तुम्हीं सो गये...

“अरे ‘अस्सी’ अभी तक नहीं आयी”...

अपने विभाग के काम पर पहुँचने में जब कभी मुझे ज़रा देर हो जाती तो रवीन्द्रजी चिन्तित हो उठते, उपर्युक्त वाक्य बीच-बीच में ज़रूर दोहराते।

आश्रम के विद्यालय में १९७८ में पढ़ाई पूरी कर जब मैंने आश्रम में ही रहने का निश्चय किया तो स्वाभाविक रूप से हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष श्री रवीन्द्रजी के साथ १९७८ की दिसम्बर से ही काम में जुट गयी। कब मेरा नाम ‘अस्सी’ पड़ गया इसका न कोई लेखा-जोखा है, न स्मृति, लेकिन अन्त तक यही नाम उनकी ज़बान पर रहा। नाम देने की उनकी यह प्रथा उनके स्नेह का सूचक थी और नाम भी वे इतने सटीक देते थे कि हैरानी होती थी। किसी को बचपन से ‘भला आदमी’ कहने लगे और वह अक्षरशः भला निकला—हर काम में भला, हर एक के साथ भला। किसी को ‘विहग’ नाम दे दिया तो किसी और को ‘सेठानी जी’। उनकी कोई विद्यार्थिनी उनके लिए ‘चुहिया’ थी तो कोई ‘सिकन्दर’। उनके आस-पास के सभी लोग उन्हीं के दिये नाम से लोगों को पहचानते थे। वे हमारे लिए स्वाभाविक नाम थे, कोई ‘मादाम’ तो कोई ‘प्रधानजी’। रवीन्द्रजी के

चले जाने के बाद नाम देने की स्नेही प्रथा की यह कड़ी टूट गयी, और क्या-क्या न टूटा उनके देहावसान से यह कहना शायद असम्भव न हो, कठिन जरूर होगा।

शुरू से ही मैं उनके लिए खास थी—छात्रा के रूप में, आश्रमवासी के रूप में—हमेशा ही उनके विशेष स्नेह का भाजन रही मैं। २३ वर्षों तक निरन्तर रवीन्द्रजी के साथ काम करके वे चुपके-चुपके बिना कुछ अधिक बोले मुझे कितना कुछ सिखा गये इसका ब्योरा देना तो मेरे बूते के बाहर है क्योंकि जो अकथनीय हो उसे शब्दों की माला में कैसे पिरोया जा सकता है भला?

जिन लोगों ने एक बार भी रवीन्द्रजी को देखा हो उनके लिए सबसे अधिक आकर्षक था उनका व्यक्तित्व। सुन्दर चमकता हुआ गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें जो व्यक्ति को परखने की आदी थीं, स्वस्थ, कर्मठ शरीर जो अन्त समय तक भरसक कर्मयोग में जुटा रहा और वह निश्चल, उन्मुक्त, लयबद्ध हास्य जिसके लिए वे सारे आश्रम में प्रसिद्ध थे, जिसकी श्रीअरविन्द ने भी प्रशंसा की थी और जिसके फलस्वरूप कहते हैं कि उस ज़माने में एक साधक ब्राह्म मुहूर्त में समुद्र-तट पर जाकर अकेले में ज़ोर-ज़ोर से लयबद्ध हास्य का अभ्यास किया करते थे!!

सचमुच लाजवाब थी उनकी हँसी, उनके ठहाके, जिन्हें सुन कर दुःखी से दुःखी व्यक्ति के अन्दर भी बरबस खुशी का फ़व्वारा फूट पड़ता था और हर एक मन ही मन सोचता था—‘यह है सचमुच ज़िन्दादिली, स्वस्थ ज़िन्दगी का राज़।’ अगर हम गहराई से सोचें तो यह सच्चाई उजागर हो जायेगी कि जो व्यक्ति खुल कर हँस सकता है वह ज़िन्दगी को अपने दामन में थामे रखता है, उससे पिछड़ नहीं जाता और ऐसे लोग अपने दुःख को, अपनी चिन्ताओं को खुशी के सागर में बहा देते हैं, वह कभी उनके चेहरे से झाँकता तक नहीं। रवीन्द्रजी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण थे। आश्रम के कितने ही विभागों की ज़िम्मेदारी ऐसे सहज भाव से अपने विशाल कन्धों पर उठाये हुए थे कि वह उनके लिए स्वाभाविक लगता था, न कभी कोई शिकायत न कोई आनाकानी। यह तो असम्भव है कि कठिनाइयाँ उनके सामने नहीं आतीं हों, लेकिन वे उन्हें अपने ठहाकों की गूँज में दफ़न कर देते थे, इतना काफ़ी होता तो हर एक यह प्रयोग कर लेता। उनके हृदय

में था माताजी और श्रीअरविन्द के प्रति अटूट प्रेम, अगाध भक्ति। काम को वे पूरी निष्ठा के साथ उनकी सेवा के रूप में किया करते थे। अतः कड़वे, खट्टे, मीठे सभी तरह के कार्यों को वे माताजी के प्रसाद के रूप में ग्रहण करते थे और कठिन काम को पूरा करने में तो उन्हें विशेष आनन्द मिलता था। माताजी भी अपने इस बालक के सामने चुनौतीभरे कामों का थाल परोस देती थीं। एक बार सचमुच बहुत बड़ी कठिनाई सामने आ पहुँची। माँ ने उसे सुलझाने के लिए रवीन्द्रजी को ही बुलवाया। रवीन्द्रजी आये, जरा गम्भीर होकर बोले—Mother, there should be division of labour. मिनट-भर के लिए शायद माँ समझ न पायीं। फिर रवीन्द्रजी बोल उठे—Yes Mother, You do the work and I take the credit. वहाँ उपस्थित सभी के चेहरों पर हँसी के फ़व्वारे फूट पड़े। ऐसे थे रवीन्द्रजी। वे अक्षरशः यह मानते थे कि काम तो माताजी कर रही हैं और श्रेय उन्हें मिल रहा है। सचमुच उनकी चिर प्रसन्नता का यही राज था।

जिसके हृदय की भावना यह हो वह स्वयं प्रसन्नता का सागर ही तो होगा जिसमें ठहाकों की उताल तरंगें उठा करतीं।

आश्रम में आये नवागन्तुक कभी-कभी उनसे डरते भी थे क्योंकि वे समझते थे कि वे बहुत कठोर तथा अनुशासनप्रिय व्यक्ति हैं। लेकिन उनके सम्पर्क में आते ही लोग समझ जाते थे कि अनुशासनप्रिय, समय के पाबन्द वे जरूर हैं, और वे कभी-कभी कारणवश कठोरता का जामा भले ओढ़ लेते थे, लेकिन कोमलता और सौहार्द उनमें कूट-कूट कर भरा था। जब वे किसी से नमस्ते करते—चाहे वह व्यक्ति बड़ा हो या छोटा, तो इतनी शालीनता से अपने विशाल हाथों को ऐसी भव्यता के साथ उठा कर जोड़ते, साथ ही हलका-सा झुक जाते कि आगन्तुक गद्गद हो जाता। और उस तथाकथित कठोरता के पीछे जो कोमलता लहराती थी उसका भी एक किस्सा सुनते चलिए—

रवीन्द्रजी को अपने एक पुराने विद्यार्थी से बहुत शिकायत थी, स्वाभाविक भी था क्योंकि जब तक वह विद्यालय में रहा शैतानियों का पिटारा रहा, उसके कारनामों की कहानियाँ तो दाल-भात की तरह हो गयीं, हर दूसरे दिन कोई न कोई शिकायत उनके कानों में पड़ ही जाती! खैर, पढ़ाई समाप्त कर वह विद्यार्थी भी अपनी राह हो लिया, बचपन की वे

बातें आयी गयी हो गयीं। कुछ वर्षों के बाद वही विद्यार्थी पॉण्डिचेरी में ही बसने आ गया, छोटा-मोटा काम शुरू किया लेकिन आमदनी का कोई ठीक ज़रिया बैठ न रहा था, आश्रम के भोजनालय में खाना शुरू किया, लेकिन जल्दी ही छोड़ दिया। रवीन्द्रजी को उसके बारे में कहीं से पता लग गया कि पैसा न दे पाने के कारण उसने भोजनालय में आना छोड़ दिया। किसी को भेज कर तुरन्त उन्होंने उस भूतपूर्व छात्र को अपने कमरे पर बुलाया। वह सकुचाता, कुछ सहमता-सा हाज़िर हुआ। उसके दोनों हाथों को थाम, अपने बहुत करीब बिठा कर सीधा उससे भोजनालय में खाना छोड़ देने की बात पूछी। वह लड़का भी स्पष्टवादी था, पैसा न दे सकने का जब कारण बताया तो रवीन्द्रजी का हृदय नम हो उठा, बोले, तेरे छात्र जीवन में मैं समझता था कि तू किसी काम का लड़का नहीं है, लेकिन आज तूने मेरा सिर गर्व से ऊँचा कर दिया, तब मैं तेरा अध्यापक था, आज मित्र हूँ और आजीवन बना रहूँगा। साथ ही बोल उठे—भोजनालय के अध्यक्ष के नाते मेरा तेरे लिए यह आदेश है कि आज से तू वहीं खाना खायेगा, पैसे की बात ज़बान पर लाया तो मुझसे बुरा कोई न होगा।

छात्र बनाम मित्र हाथ जोड़ कर बहुत कठिनाई से बोल पाया—आपका आदेश सिर आँखों पर, जैसे ही पिताजी घर से पैसा भेज देंगे मैं चुका दूँगा।

उसे एक चपत लगाते हुए रवीन्द्रजी बोले—घर पर बैठ कर कौन-से घर और कौन-से माँ-बाप की बात कर रहा है तू? यहाँ माँ जगज्जननी अपने बच्चों के लिए खाना परोसे खड़ी हैं और तू टके-पैसों की बातें करता है। खबरदार! इस बार उसके गाल पर चपत नहीं, पीठ पर एक धौल लगा...

“जा अब भाग जा, सीधा भोजनालय जाना, अब अगर मैंने तेरे बारे में ऐसी-वैसी कोई शिकायत सुनी तो...”

इतनी मीठी डाँट उसने जीवन में पहली बार खायी थी, रवीन्द्रजी के प्रति उसके रोम-रोम में जो कृतज्ञता बस गयी उसकी साँधी खुशबू हमेशा बनी रही। फिर उसका पॉण्डिचेरी में व्यापार भी खूब चला और वह आश्रम में भी आर्थिक दृष्टि से अपनी सेवाएँ खुल कर देता रहा।

उनकी सहृदयता का यह तो एक नमूना-भर है, ऐसे छोटे-बड़े कितने ही किस्से हैं जो उनके व्यक्तित्व की पूर्णता को दर्शाते थे। और समय के तो ऐसे पाबन्द कि यह तो नहीं कहा जा सकता कि लोग उन्हें देख कर

घड़ी मिलाते थे क्योंकि वे तो गन्तव्य स्थान पर हमेशा समय से काफ़ी पहले पहुँच जाया करते थे, उनका यह उसूल था कि उनकी वजह से किसी को इन्तज़ार न करना पड़े। यद्यपि यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वे आश्रम के कर्मठ व्यक्तियों में सबसे अगुआ थे, ऐसा लगता था कि माताजी के लिए काम करना ही उनका योग था और शायद मिनट-भर की भी फ़ुरसत लेकर वे ठाले बैठते न थे, लेकिन समय से पहले पहुँचने के इतने पाबन्द थे मानों उनके पास अवकाश ही अवकाश हो। सचमुच एक दिन उन्होंने मुझे इसका गुर बताया भी था। पुरोधा की सह-सम्पादिका बना दिया था उन्होंने मुझे। मेरे काम तो दीर्घसूत्री होते थे, अन्तिम क्षण पर प्रेस में पाण्डुलिपि भेजी जा रही है। पहले तो कुछ समय तक रवीन्द्रजी कुछ न बोले, फिर एक दिन कहने लगे—देख अस्सी, आग लगने पर कुआँ नहीं खोदा जाता, तू लग कर छह महीने की सामग्री तैयार कर ले फिर अन्तिम क्षण पर हड़बड़ी मचाने की ज़रूरत ही न पड़ेगी। अपना उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि देख मैंने यह चीज बनारसीदास चतुर्वेदीजी से सीखी थी, उनके पास पत्रिका के १२ अंकों की सामग्री तैयार रहती थी। मैं भी यही किया करता था। सचमुच जब उन्होंने पुरोधा का काम मुझे थमाया तो १ साल की सामग्री के साथ ही थमाया था!! ‘जो आज करे सो अभी कर ले’ का मन्त्र ही उनकी इतनी सारी ज़िम्मेदारियों को सहज और सुचारु रूप से चलाने का राज़ था। वे हमेशा कहा करते थे कि जो लोग कहते हैं कि, ‘भई क्या करें, बिलकुल समय ही नहीं मिलता’ वे समय का सचमुच सदुपयोग करना नहीं जानते क्योंकि अगर व्यक्ति सचेतन होकर जब जो काम कर रहा हो उसे भरसक शक्ति से सम्पन्न कर ले तो काम भी जल्दी हो जाता है और उसे दुबारा, तिबारा करने की नौबत भी नहीं आती।

कितने पते की बात है यह और रवीन्द्रजी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण थे। जो करना होता आगा-पीछा सोचे बिना बस जुट जाते उसमें और काम को पूरा करके ही साँस लेते।

कुछ शब्द ऐसे भी थे जिनका अस्तित्व उनके शब्दकोश में न था। जैसे—‘असम्भव’ और ‘मैं भूल गया’ या ‘मैं भूल गयी’।

शुरू-शुरू में जब कभी मैं कहती, ‘अरे, यह तो मैं भूल गयी’ तो एक हलकी-सी चपत ज़रूर लगती। वे कहा करते थे—अस्सी, यह दोष बड़ी

आसानी से सुधारा जा सकता है, बस बात है ज़रा-सा सचेतन बनने की। तू भूल इसलिए जाती है क्योंकि तू याद रखना नहीं चाहती। कितने पते की बात रवीन्द्रजी ने कितनी स्पष्टता से कह दी थी उस रोज़। और सचमुच उनकी कृपा से उस दिन से “मैं भूल गयी” का राग अलापना मेरा बहुत कम हो गया। और असम्भव शब्द तो सचमुच उनके लिए बेगाना था। जो काम दूसरों को असम्भव लगता उसे रवीन्द्रजी द्वारा सम्भव बनाना तो आश्रम में जानी-मानी बात थी। और काम के प्रति निष्ठा और लगन की तो वे साक्षात् मूर्ति थे। जब कभी लिखने बैठते तो उनकी मुद्रा देखने-लायक होती। भव्य मूर्ति की तरह आलथी-पालथी मारे बैठे हैं, सामने कागज़ पर छोटे-छोटे अक्षर पानी की तरह सरकते जा रहे हैं, न कहीं काट, न छॉट। कोई ढोल भी बजा कर चला जाये वे लौलीन अपने लेखन में जुटे रहते थे। कभी-कभी हम कार्यकर्ता उनसे कुछ पूछने के लिए उनके कमरे में कदम रखते और उनकी वह मुग्ध छवि देख कर ठिठके ही खड़े रह जाते, उस शान्ति को भंग करना तो अपनी बेवकूफी जताना होता।

कितनी ही बातें हैं, कितने ही किस्से हैं, कितने ही गुणों के धनी थे रवीन्द्रजी यह सब सुनाना तो मेरे बस की बात नहीं है क्योंकि जो व्यक्ति कलम का धनी हो, हृदय का भी धनी हो, जो अनेक भाषाविद् हो, जिसने आश्रम में कई तरह के पापड़ बेले हों, जो अनेक वर्षों से आश्रम में रहते हुए भी बाहर से आने वालों की कठिनाइयों, परेशानियों को बखूबी समझता हो और उनका समाधान करने का प्रयत्न करता हो, जो अपने छात्रों में अनुशासनप्रिय होने के साथ-साथ उतना ही लोकप्रिय भी हो और सबसे बढ़ कर जो सदैव श्रीअरविन्द और माताजी का अप्रतिम, अनन्य सेवक, भक्त और अनुयायी रहा हो, जो और न जाने क्या-क्या हो, उसके बारे में लिखने बैठो तो ओर-छोर ही हाथ से छूट जाता है। इसी वजह से कुछ इधर से, कुछ उधर से धागों को उठा कर लेख बुनना पड़ता है जो ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व की अंशतः झाँकियाँ भर दे सकता है।

उर्दू के मौलवी भी थे वे मेरे! रात को आध घण्टा उर्दू पढ़ती, मुझ जैसे कूढ़मज़्ज़ शागिर्द की तारीफ़ भी वे खूब किया करते थे। घर पर तो सब मज़ाक उड़ाते कि सालों से उर्दू पढ़ती चली आ रही हैं आप लेकिन शायद अभी तक अलिफ, बे, पे, ही सीख पायी हैं या दूसरी या तीसरी

जमात तक ही पहुँच पायी हैं, लेकिन रवीन्द्रजी कहा करते थे, भई, हमारी उर्दू बेगम बीच-बीच में रात को टपक जाती हैं तो खुद तो सीखती ही हैं और साथ-साथ हमारी बरसों पहले सीखी उर्दू ज़बान में भी निखार ले आती हैं... जी हाँ, मैं उनके कमरे में हफ़्ते में दो-चार बार तो टपक ही जाती थी, बाकी दिन अल्लाह अल्लाह खैर सल्लाह, क्योंकि हमारे आश्रम में रात को इतने समारोहों की भीड़ लगी रहती है कि हर दूसरे रोज़ कोई न कोई जलसा होता और मैं अपनी उर्दू की पढ़ाई को ख़ुदाहाफ़िज़ कह जलसा देखने पहुँच जाती। कुछ दिनों के बाद रवीन्द्रजी रोज़ सवेरे पूछ लिया करते, “आज उर्दू बेगम के रात को दीदार होंगे या फिर वे ‘खटमलों की किसी लड़ाई’ का मज़ा लूटने जा रही हैं।” जी हाँ, घर, बाहर सभी जगहों पर मेरी यह धूम मची थी कि आश्रम के किसी कार्यक्रम, किसी जलसे में जाने से मैं चूकती नहीं इसीलिए रवीन्द्रजी ने यह बढ़िया मज़ाक बना लिया था कि हमारी उर्दू बेगम तो वहाँ भी तमाशा देखने पहुँच जाती हैं जहाँ दो खटमल लड़ रहे हों!!

अपने जीवन के अन्तिम ढाई-तीन वर्षों को छोड़ कर रवीन्द्रजी बीमारी शब्द से अपरिचित ही रहे। सचमुच अपने स्वास्थ्य के बारे में तो वे बच्चों से भी इस मामले में बदतर थे कि अगर चिकित्सक उनसे पूछते कि आपको कैसा लग रहा है तो कहते, भई, चिकित्सक तुम हो या मैं, तुम्हें जानना चाहिये कि मेरे शरीर में क्या गड़बड़ है, मुझे पता होता तो मैं खुद ही न ठीक कर लेता क्या? और बेचारा चिकित्सक मुँह बाये खड़ा रहा जाता। या फिर वे अपने सहायकों की तरफ़ इशारा करके कह बैठते, भई अनु और रूपाली से पूछो, ये शायद ज़्यादा बता सकें कि मुझे क्या तकलीफ़ है!!

अपने बारे में इतने लापरवाह और दूसरी तरफ़ ऐसे थे कि उनके साथ काम करने वालों में से किसी की तबीअत ज़रा भी नरम पड़ी नहीं कि रवीन्द्रजी चिन्ता का सागर बन जाते थे। “अरे, अनु को तो तेज़ बुखार चढ़ गया है” और जब तक अनुबेन का बुखार और कमज़ोरी दूर न हो जाते रवीन्द्रजी को अन्दर ही अन्दर चिन्ता बनी रहती।

कभी दूसरी सहायिका रूपाली को आने में मिनट-भर की देर हो जाती तो चिन्ता में डूब जाते।

“अरे अस्सी अभी तक नहीं आयी” की रट तब तक लगाते जब तक

मैं उनके सामने हाज़िर न हो जाती।

जिस अस्सी की उन्हें हमेशा फ़िक्र बनी रहती वही उनके देहावसान के समय यूरोप-भ्रमण पर गयी हुई थी!! २४ अगस्त २००१ को सवेरे-सवेरे जब लन्दन में यह खबर मिली कि रवीन्द्रजी अब नहीं रहे... पहले तो दिमाग में सन्नटा छा गया फिर स्मृतियों की जो बाढ़ उमड़ी उसने सभी बाँधों को तोड़-फोड़ दिया...

सारे दिन उनके मुँह से पचीसों बार सुना वह शेर मेरे ज़ेहन में मँडराता रहा—

*यह चमन यूँ ही रहेगा और लाखों जानवर
अपनी-अपनी बोलियाँ सब बोल कर उड़ जायेंगे।*

जब कभी आश्रम में किसी की मृत्यु हो जाती तब-तब वे यह शेर सुनाते जिसका अर्थ मैंने उनके जाने के बाद जाना। सचमुच लन्दन की सारी गलियाँ, सारे बाग-बगीचे तो रोज़ की तरह थे, बवण्डर मचा था तो मेरे सीने में।

पॉण्डिचेरी लौटने पर जैसे ही उनके कमरे का ज़ीना चढ़ने लगी तो कहीं से स्पष्ट यह आवाज़ सुनायी दी, “अरे अस्सी अभी तक नहीं आयी।”

मैं दो-दो सीढ़ियाँ फाँदती हुई ऊपर पहुँच गयी। बिस्तर पर उनका मुस्कुराता हुआ, दमकता हुआ सजीव छायाचित्र सजा था जो मानों मुझे देखते ही मुखरित हो उठा—“अरे अस्सी, तू आ गयी।”

मैं उनसे भला कैसे पूछती कि आपकी अस्सी तो आ गयी, लेकिन आप कहाँ चले गये...?? क्योंकि—

*बड़े शौक से सुन रहा था ज़माना
तुम्हीं सो गये दास्तां कहते कहते...*

(‘पुरोधा’, जनवरी २००२)

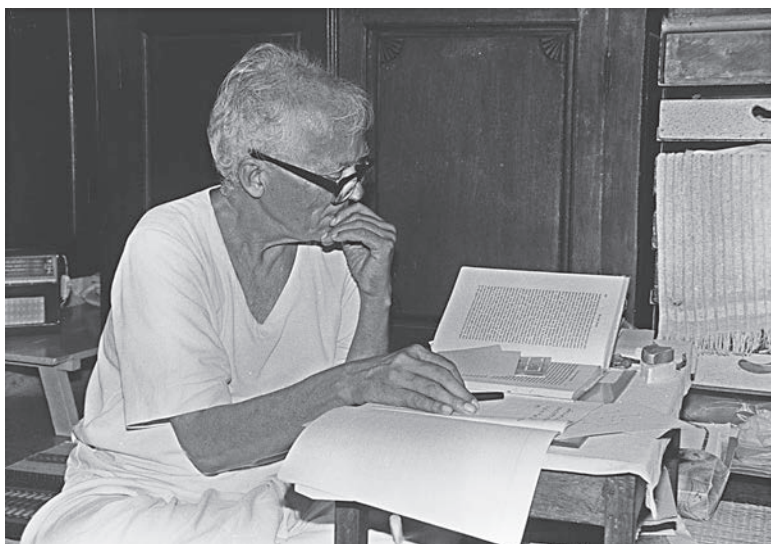
—वन्दना

श्रीमाँ ने रवीन्द्रजी से एक बार कहा था :

मेरे प्यारे बालक, मैं हमेशा उपस्थित हूँ, तुम्हारे पास, तुम्हारे अन्दर और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहते हैं। (१९ जून १९३९)



‘टिफिन कैरियर’ की वण्डी (गाड़ी) खींचते हुए रवीन्द्रजी



लेखन-कार्य में लौलीन

रवीन्द्रजी The Rest-Less one

(रवीन्द्रजी के चहेते विद्यार्थियों में से थे, पुरुषोत्तम कोठारी उर्फ पुरु।)

शीर्षक पढ़ कर सकपकाइयेगा नहीं। पचास साल पहले आज़ादी की लड़ाई के माहौल में फ़िरंगियों की तौहीन करना स्वाभाविक था, मगर आज वक्त तौहीन से ज़्यादा तालीम का है। वे एक ऐसे शब्द को विरासत में छोड़ गये जो रवीन्द्रजी के लिए बिलकुल उपयुक्त है। उन्हें अगर काम नहीं मिलता तो वे बेचैन हो उठते और जितना कम आराम करते उतना ही उन्हें सुकून मिलता। **Rest-Less** में ये दोनों गुण आगे चल कर प्रमाणित होंगे और **Rest-Less** का मज़ा लेना है तो थोड़ा-सा सब्र अनिवार्य है। ‘पुरोधे’ के जनवरी अंक में, (‘पुरोधे’ जनवरी २००२ का अंक रवीन्द्रजी को समर्पित था) कुछ नामी और कुछ अनाम अध्यापकों, कनिष्ठा नामक छात्रा की (जो एक स्कूल जाती हुई लड़की की माँ है) और कुछ भारतीय रेलवे के हिसाब से २५ प्रतिशत डिस्काउण्टवाले ‘सीनियर सिटीज़नों’ की श्रद्धाञ्जलियाँ पढ़ीं। मुझसे भी लिखने के लिए कहा गया था मगर तब मैं दो कारणों से असफल रहा। वैसे असफलता कारणों से नहीं होती, या तो बहानों से होती है या फिर बुरी आदतों की वजह से, और जिनका खुलासा कभी-न-कभी होकर ही रहता है। लीजिये, बुरी आदत से शुरू करते हैं जिनका मैं शिकार हूँ और वे थे शिकारी। कक्षा में गृहकार्य तो मैं दे देता मगर हमेशा **IST** (इण्डियन स्टैण्डर्ड टाइम) से। मेरे **IST** से तो आप वाकिफ़ हैं, मगर रवीन्द्रजी की भाषा या जीवन में **IST** का अनुवाद होगा, “इसी समय तत्काल”। माताजी कोई भी काम करवाने को कहतीं, वे तुरन्त बोल पड़ते, “मैं अभी किये देता हूँ माँ।” भारतीय रेलवे ने तत्काल-योजना का आरम्भ पिछली शताब्दी के अन्त में किया, मगर इसकी नींव पिछली शताब्दी के आरम्भ में उदाहरण बन कर रवीन्द्रजी करीब ७५ साल पहले डाल चुके थे। एक बार माँ ने उनसे कहा, “तुम क्या-क्या काम करते रहोगे” तो जवाब आया, “जब मैं खुद कर सकता हूँ तो दूसरों से क्यों और कैसे कहूँ?” जी हाँ, उनके नाम में रवि तो था मगर रविवार का नामोनिशान न था। एक दफ़ा माँ ने कहा, “यह पूरा नमक काला हो गया है। इसे फिर से उबाल कर छानना होगा। इतना मुश्किल काम लकड़ी के चूल्हे पर रोंगटे जला देने वाली आग में, कौन, कब और

कैसे कर पायेगा?” रवीन्द्रजी की दिनचर्या नामक रेलगाड़ी सवेरे चार बजे से रात के बारह बजे तक ऐसे चलती मानों उसके ब्रेक फ़ेल हो चुके हों और डीज़ल ख़तम होने पर ही रोकी जा सकती हो। नमक का काम भी झेल लिया। माँ से बोले कि उनके पास समय है, वे नमक का काम कर लेंगे। फिर वे रात के बारह बजे से सवेरे दो बजे तक नमक उबालते, छानते और फिर गरमी इतनी लगती कि समुद्र के किनारे जाकर दो से चार बजे तक दो घण्टे लेट जाते। **Rest-Less** को और समझाना बेकार है।

मुझसे अगर कोई कहे कि घण्टों तक मेहनत करना अच्छी बात है मगर इसमें खासियत क्या है तो मैं कहूँगा कि तीन तरह के लोग होते हैं। पहले वे जो एक तरफ़ तो काम करते हैं तो दूसरी तरफ़ ढिंढोरा भी पीट देते हैं। दूसरे वे जो ढिंढोरा तो नहीं पीटते, लेकिन मन-ही-मन यह सोचते हैं कि मैंने काम करके कितना बड़ा त्याग किया, ‘आज तो खाना तक नहीं खाया’। तीसरे, रवीन्द्रजी जैसे जो न बलिदान का सोचते हैं न ढिंढोरा पीटने में अपनी शक्ति गँवाते हैं। काम छोटा हो या बड़ा, उसे वे सेवा और सौभाग्य समझते हैं। हाँ, एक श्रेणी तो मैं भूल ही गया, जिसे सबसे पहले आना चाहिये था। चलिये, सुविधा के लिए उसे ज़ीरो कहते हैं जो एक तरफ़ कामचोर होते हैं और दूसरी तरफ़ बिना मतलब के या अपने मतलब के लिए सिर्फ़ ढिंढोरा बिना थके पीटते ही रहते हैं। ऐसे आलसी टट्टू और अपने मुँह मियाँ मिट्टुओं की खिंचाई मैं विस्तार से फिर किसी विशेषांक में मौका मिला तो स्वाद से करूँगा।

चलिये, बुरी आदत को पीछे पछाड़ तो नहीं, लेकिन छोड़ कर बहानेबाज़ी से जूझें, हालाँकि बहानों में भी कुछ तो सच्चाई होती है। शुद्ध हिन्दी से सम्पर्क छूटे करीब बीस साल बीत चुके। जनवरी अंक के दिग्गजों के साथ अपना लेख छपवाने में साहस कुछ कम था और शर्म कुछ ज्यादा। न चाहते हुए भी आदमी से कभी-कदास तुलना हो ही जाती है और निश्चित रूप से दूसरों का पलड़ा भारी रहता है। मगर मैं अपने भारीपन का क्या करूँ? उनके जाने पर श्रद्धाञ्जलि अर्पण करूँ या जन्मदिन के अवसर पर विलम्बित उपहार भेंट करूँ? आप इस लेख को चाहे कुछ भी समझें, मेरे लिए तो भारीपन उतारने का एक माध्यम है, क्योंकि मेरा उनके साथ सम्बन्ध ही एक मित्र का रहा, और मित्र होते ही हैं एक दूसरे को हलका

करने के लिए। हम अपनी छोटी-मोटी, अक्सर बेकार की समस्याएँ, उनके पास ले जाते तो वे लाचारी दिखा कर कहते, “भाई, मैं इसमें सुनने के सिवाय और कर ही क्या सकता हूँ?” वे कब, कहाँ, किससे और कैसे कहते यह समझना जितना आसान है, कर पाना उतना ही कठिन, पर समाधान होकर ही रहता। वे लोगों की कड़वाहट को पानी की तरह पी जाते और मेहनत के पसीने में निकाल देते। फूल बाँटने का ठेका तो माँ ने खुद ले रखा था मगर फलों का इन्हें सौंपा था। एक तरफ़ कुछ लोग इनके दिये हुए फल खाते, इनका बनाया हुआ नमक खाते, तो दूसरी तरफ़ कुछ निर्लज्ज इन्हें कोसते और शायद ज़िन्दगी-भर कोसते रहेंगे क्योंकि आलसी टट्टू की तरह बैठ कर कोसने वालों और मेहनत से कोसों चलने वालों में ज़मीन आसमान का अन्तर है। जो व्यक्ति नीयतबुरी नामक फल और हराम ब्राण्ड नमक खाता है उसका न कोई डॉक्टर इलाज कर सकता है और न ही कोई वकील उसे ठिकाने लगा सकता है।

एक बार उन्हें तेज़ बुखार था, कमज़ोरी से बदन टूट रहा था फिर भी कड़ी धूप में वे ‘वण्डी’ अर्थात् गाड़ी (आश्रमवासियों के यहाँ टिफ़िन पहुँचाने का काम भी वे किया करते थे) किसी तरह ढकेले चले जा रहे थे। ऐसे मौके पर उन्हें पीछे से माँ के सहारे का आभास हुआ। हर रोज़ शाम को क्रीड़ांगण में मूँगफली का डिब्बा लिये वे जिस माँ की परछाईं बने घूमते थे, आज वही माँ अपने बेटे की परछाईं बन उसे स्वयं सहारा देकर सम्हाल रही थीं मानों व्यक्तिगत रूप से उनका ठेका ले रखा हो। उनके शारीरिक परिश्रम के पराक्रमों से तो आप परिचित हो ही चुके हैं, अब मानसिक बाधा का भी उदाहरण सुन लीजिये। किसी को आश्रम से कभी निकाल दिया जाता तो सफ़र का खर्च देना और स्टेशन पहुँचाना हमारे लिए उन्हीं का काम था, मगर उनके लिए अपनी प्रिय माँ का अप्रिय काम था।

अब कुछ अपनेपन की बातें। जो अध्यापक सिखाते हैं वे ज्यादा कुछ नहीं जानते। हाँ, जिनसे हम सीखते हैं वे किसी विशेष मिट्टी के बने होते हैं। कुछ अध्यापक उदाहरण देकर सिखाते हैं तो कुछ उदाहरण बन कर। हमारी रुचि तो उस विशेष मिट्टी से बने उदाहरणों में है। आपको दुबारा याद दिला दूँ कि मेरा सम्बन्ध एक मित्र का था, चाहे मैं स्कूल में छात्र था या विभाग में कार्यकर्ता। यह सम्बन्ध कितना घनिष्ठ था, कितना गहरा था,

यह नाप-तोल का सवाल नहीं। आपको अन्त में हमारी मैत्री का आभास हो तो प्रयास सफल समझूँगा। पाठशाला की बात पहले याद आती है। कक्षा में ऐसा अक्सर होता जब कोई-न-कोई गृहकार्य नहीं करता। एक दिन ऐसा भी आया जब किसी ने नहीं किया और डाँट खूब पड़ी। संक्षेप में सुनिये क्योंकि विस्तारपूर्वक सुनाने में मुझे साहस चाहिये और आपको धैर्य। “तुमलोगों को अगर ज़रा भी रुचि नहीं है तो पढ़ना छोड़ दो या फिर मैं कक्षा लेना बन्द कर देता हूँ वगैरह वगैरह।” उन दिनों किसी भले आदमी ने मुझे शतरंज सिखायी थी जिसका एक फ़ॉर्मूला है, “आक्रमण करना, रक्षा का सबसे बेहतर तरीका है,” फिर क्या था। मुझ जैसे प्यादे ने महारथी पर धावा बोल दिया—“हमने काम नहीं किया यह हमारी गलती है और हम इसे स्वीकार करते हैं, मगर आपको अपना काम छोड़ने का कोई अधिकार नहीं। हम तो कक्षा में आयेंगे और नुकसान होगा तो हमारा होगा, आपका तो नहीं।” बाहर सन्नाटा छा गया और अन्दर तूफ़ान उमड़ने लगा। जहाँ तक मुझे याद है, गिलहरी से लेकर कौए तक स्तब्ध और मेरे साथी दंग रह गये। रवीन्द्रजी सोच रहे होंगे, “कुछ ही दिन पहले इनको जो मुहावरे सिखाये थे उनमें ‘छोटा मुँह बड़ी बात’ न सिखाता तो ठीक रहता।” उन दिनों कलाई की घड़ी हम बच्चों के पास नहीं के बराबर थी, और मेरे अन्दर यह ख़्याल आने लगा—“कहीं घण्टी बजाना भूल तो नहीं गये!” आखिरकार जब बजी तो वह मधुरता में सारे मन्दिरों की घण्टियों को मात कर गयी। एक घण्टी अगर इतनी तसल्ली आदमी को दे सकती है तो मूर्ति पता नहीं कितने चमत्कार करती होगी। खैर, गूँज के साथ ही मैं सीढ़ियों तक लपक कर पहुँच चुका था। इतने में किसी शत्रु-समान साथी ने आवाज़ दी, “पुरु, तुम्हें रवीन्द्रजी बुला रहे हैं।” मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। होशियारी दिखा कर बेकार का ख़तरा मोल ले लिया। ज़रूर हिन्दी की यह अन्तिम कक्षा है और छात्रावास लौट कर बड़े भैया (जो रवीन्द्रजी के प्रिय छात्रों में थे और देहावसान के वक्त सारा दिन उनके पास बिता पाये) से कानों का सुडौलपन बिगाड़ने की नौबत अलग!! पसीने में नहाना तो कोई मुझसे सीखे। उन्होंने हाथ उठा कर मेरे कन्धे पर रखा और आश्रम में अपने कमरे की तरफ़ बढ़े। परिणामों के भय से मैंने सोचा, चलो मामले को यहीं दफ़ना दिया जाये। “रवीन्द्रजी, मुझे आपसे ऐसे नहीं बोलना चाहिये

था।” वे कुछ नहीं बोले। शरीर में तो अब अकाल आ चुका था। पसीना हो तो छूटे। भोजनालय का बाल्टी-जैसा गिलास भी प्लास्टिक के कप के समान लगने लगा, अगस्त्य ऋषि का समुन्दर पी जाना मुमकिन लगने लगा। समाधि की तरफ़ दौड़ता भी तो कैसे? उनका ठण्डा हाथ जो कन्धे को जकड़े हुए था। माँ को मजबूरन दूर से ही पुकार लिया। फिर उनके कमरे की सीढ़ियों की चढ़ाई ऐसे आरम्भ हुई जैसे कोई सेना किसी किले को जीतने के प्रयास में लगी हो। कमरे में उन्होंने बैठने को कहा और खुद अन्दर की तरफ़ अदृश्य हो गये। मेरी विचार-धारा कुछ उस आजीवन कैदी से मिलने-जुलने लगी जिसे भाग निकलने का अचानक एक मौका मिला हो। इतने में वे एक थैला लिये आये और बोले, “यार, तूने तो मेरी आँखें खोल दीं। ले, ये फल खा ले और भाग जा।” मेरे तो प्राण पखेरू उड़ान लेते-लेते रह गये! अब क्या था। भीगी बिल्ली में वीररस की मानों बाढ़ आ गयी और मैं बोल पड़ा, “मैं क्या आपकी आँखें खोलूँगा। आपने इतना मोटा चश्मा जो लगा रखा है” और हम दोनों ज़ोरों से हँस पड़े। इतने बड़े शिक्षक में एक चौदह वर्षीय बालक के प्रति इतना स्नेह और इतनी विनम्रता! एक बार उनसे अखरोट लेते समय मैंने कहा, “आपके अखरोट मुझे कम पसन्द हैं क्योंकि कड़वे बहुत निकलते हैं।” जवाब आया, “जैसे को तैसा।” एक दिन कबीर की बारी आयी—

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।

पन्थी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।

मैंने कहा, “कबीरदास अगर आपको अपने फल के कमरे में फलों से लदे हुए देखते तो यह दोहा कभी न लिखते।”

पाठशाला से अब विभाग की तरफ़ बढ़ते हैं। उन्हें चल कर ‘कॉटेज’ (आश्रम का अगरबत्ती-विक्रय-विभाग) आने में जब तकलीफ़ होने लगी तो मैं कार लेकर आश्रम पहुँच जाता, वे मुझसे कहते, “तू खुद तो सुधरा नहीं, अब मुझे भी बिगाड़ रहा है।” और मैं कहता, “महारथियों को प्यादों-समान चलना शोभा नहीं देता।” एक बार कक्षा में गृहकार्य न करने पर मुझसे कहा, “बेवकूफ़, बड़ा होकर क्या घास काटेगा?” पन्द्रह साल पहले की बात याद दिलाते हुए मैंने एक दिन उनसे कहा, “आप तो बड़े ज्योतिषी निकले। आपकी दोनों बातें सच निकलीं। आश्रम के ‘स्पॉटर्स ग्राउण्ड’ में

मैं पहले पानी डाल-डाल कर घास को बड़ा करता हूँ और फिर उसे काट देता हूँ। घास भी काट रहा हूँ और बेवकूफ भी सिद्ध हुआ।” सिद्ध पुरुषों के सम्पर्क में रह कर चलो कहीं तो सिद्ध हुआ। आश्रम में रामायण पढ़ाने वाले वे हमारे प्रसिद्ध कथाकार मुरारी बापू थे और मैं था आनन्द फ़िल्म का “चला मुरारी हीरो बनने”। उनसे मिली जन्मों की पूँजी का बखान मैं उस भजन से करता हूँ, “पायो जी मैंने, राम रतन धन पायो।” रामायण की पंक्तियाँ उस उमर में गले पार नहीं उतरती थीं मगर आज स्तुति-समान प्रतिध्वनित होती हैं—

*“रघुकुल रीति सदा चली आई
प्राण जाई बरु बचन न जाई”*

समय ने उनके प्राण तो ले लिये मगर वे हमारे बचपन को अपने वचनों से सुशोभित कर गये। आज आश्रम का जीवन कई अनोखी बाधाओं से गुज़रता चला जा रहा है मगर वे हमेशा की तरह हर क्रिया में प्रोत्साहन देते हुए मानों कह रहे हैं, “ये सफ़र बहुत है कठिन मगर, न उदास हो मेरे हमसफ़र”।

कभी समुद्र-किनारे टहलो तो हर मौज एक नया मुहावरा, एक नया किस्सा ले आती है और जब ये ख़तम हो जाते हैं तो उनकी हँसी गूँज उठती है जिसका कोई अन्त नहीं, और होना भी नहीं चाहिये, क्योंकि दो मित्रों का स्नेह अगर हँसी से बँध जाये तो इससे बढ़िया डोर नहीं, जिसकी एक तरफ़ हमारे रवीन्द्रजी हों और दूसरी तरफ़ उनका “बेवकूफ़” जो आज भी अपना लेख देर से समर्पित कर रहा है, और वे मन ही मन मुस्कराते हुए सोच रहे होंगे, “यह उल्लू का पट्टा पता नहीं कब सुधरेगा”। उनका चित्र तो मैंने आँक दिया मगर किस गुण का ‘फ्रेम’ बनाऊँ? कृतज्ञता शायद ठीक रहेगा क्योंकि मैं हमेशा उनका आभारी या उनकी आभा का ऋणी रहूँगा। एक ही बात है। दो मित्रों में आपने यह वाक्य अक्सर सुना होगा, “एक ही बात है”।

मौके-मौके पर रवीन्द्रजी शेर सुनाने के शौकीन थे। मैं एक शेर से ख़तम करना चाहूँगा जो मेरे हिसाब से उन पर सौ फ़ीसदी खरा उतरता है—

फ़ानूस बन कर जिसकी हिफ़ाज़त हवा करे

वो शमा क्या बुझे जिसे रौशन ख़ुदा करे।

‘पुरोधा’ मार्च २००२

—पुरुषोत्तम कोठारी

कर्मयोग के साधक : श्री रवीन्द्रजी

(शिक्षाकेन्द्र की भूतपूर्व अध्यापिका स्व. ज्ञान बहन का लेख।)

रवीन्द्रजी उन थोड़े-से व्यक्तियों में से थे जिन्हें श्रीमाँ ने पकड़ा था। गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार) से आयुर्वेद में स्नातक परीक्षा पास कर अप्रैल सन् १९३८ में (२१ वर्ष की आयु में) गाँधीजी के साथ वर्धा आश्रम में रहने के लिए वे हरिद्वार से चले गये थे। वर्धा आश्रम में कुछ दिन ठहरे फिर रवीन्द्रजी ने साथियों से कहा, “मैं पॉण्डिचेरी आश्रम देख कर वापिस आ जाऊँगा।” उनका विश्वास गाँधीजी में था और वे ग्राम में रह कर रचनात्मक काम करना चाहते थे। वे ३ जुलाई १९३८ को आश्रम में आये थे।

श्रीमाँ ने उन्हें भोजनालय में काम दिया था। पर थोड़े-थोड़े समय के बाद वे उनका काम बदल देती थीं। भोजनालय के सब विभागों में उन्होंने थोड़े-थोड़े समय के लिए काम किया था। उन्हें हर काम का और उसकी कठिनाइयों का अनुभव करा कर, अन्ततः श्रीमाँ ने उन्हें शीर्ष स्थान पर बिठा दिया। इसी तरह घर-घर कोयला-वितरण का काम भी उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस दिन वे काले-भभूत हो जाते थे, फिर भी निःसंकोच वे इस काम को कई वर्षों तक करते रहे।

श्रीमाँ उन पर बहुत विश्वास करती थीं। हर ज़िम्मेदारी का काम उन्हें सौंपती जाती थीं। नये आने वाले व्यक्तियों को कहाँ काम देना है यह भी उन पर आ पड़ा था। आरम्भ में श्रीमाँ परामर्श देती थीं, बाद में उन्होंने रवीन्द्रजी पर ही वह कार्य छोड़ दिया।

हिन्दी साहित्य की इन्होंने जो सेवा की है वह अकल्पनीय है। श्रीमाँ और श्रीअरविन्द की पुस्तकों का जितना अनुवाद हिन्दी भाषा में उपलब्ध है उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। इसका अधिकतर श्रेय रवीन्द्रजी को ही जाता है। और यह गम्भीर और कठिन काम उन्होंने किया इतने सारे दायित्वों को सँभालते हुए : भोजनालय, ‘लॉड्जी’, ‘बेकरी’ की पूरी व्यवस्था, फलों के थैले भरना, साधकों और आगन्तुकों को अलग-अलग विभागों में काम देना, उन सबकी आवश्यकताओं और समस्याओं को सुनना, श्रीमाँ के लिए पेय तैयार करना, अपने शिक्षाकेन्द्र में हिन्दी कक्षाएँ लेना, ‘अग्निशिखा’ और ‘पुरोधे’ दो मासिक पत्रिकाएँ चलाना आदि।

सन् १९७२ में, श्रीअरविन्द की शताब्दी के अवसर पर, सरकार ने रवीन्द्रजी से अनुरोध किया कि वे श्रीअरविन्द और श्रीमाँ पर कुछ पुस्तकाकार रूप में लिखें। वे इसके लिए तैयार न थे, इसलिए कि कौन भला इनके बारे में लिख सकता है, इनका जीवन तो ऊपरी तल पर नहीं जिया गया। सारी बात उन्होंने श्रीमाँ के सामने रखी। श्रीमाँ ने कहा : “तुम नहीं लिखोगे तो सरकार किसी और से लिखवा लेगी और वह और भी ख़राब चीज़ होगी। अच्छा है, तुम ही लिखो।” इसके बाद ही उन्होंने श्रीअरविन्द-श्रीमाँ पर हिन्दी और अँग्रेज़ी में कई पुस्तकें लिखीं : ‘लाल कमल’, ‘श्वेत कमल’, ‘श्रीअरविन्द : जीवन और दर्शन’, ‘श्रीअरविन्द : शाश्वत के प्रतिनिधि’, ‘White lotus’, ‘Red Lotus’ आदि।

इतना कार्य करने के उपलक्ष्य में सन् २००० में बंगाल सरकार ने इन्हें ‘श्रीअरविन्द पुरस्कार’ से सम्मानित किया था।

सन् १९६८ में रवीन्द्रजी ने श्रीमाँ को लिखा था : “माताजी, मैं भोजनालय में तीस वर्ष काम कर चुका हूँ। अगर आपको लगे कि भविष्य की आवश्यकताओं की दृष्टि से मेरे स्थान पर युवकों को रखना ज़्यादा अच्छा रहेगा तो मैं खुशी से पीछे हट जाऊँगा।”

श्रीमाँ ने उत्तर दिया : “काम के लिए अधिक अच्छा है कि तुम जारी रखो क्योंकि तुम मुझे बुला सकते और अनुभव कर सकते हो। एक युवक शायद अधिक ऊर्जा से तो भरा होगा पर वह मानेगा कि वह स्वयं काम कर रहा है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे बने रहने के लिए ईमानदारी, सच्चाई तथा अन्य अच्छे कारण भी हैं जिनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।”

फलों के थैले भरने जैसा साधारण काम भी श्रीमाँ ने कितने जतन से सिखाया था और कैसी साधना थी शिष्य की। श्रीमाँ कहती थीं : “फलों की ट्रे ले आओ और इसे पकड़े रहो।” माँ स्वयं एक-एक थैला उठातीं, खोलतीं, उसमें फल डाल कर बाँध कर रखतीं। एक-एक घण्टा लग जाता था और ये ट्रे थामे खड़े ही रहते। एक दिन श्रीमाँ ने कहा : “ये पाँच थैले तुम भरो।” बाद में माँ ने देखा, समझाया कि कहाँ ठीक नहीं हुआ। इस तरह एक महीने तक उनसे थैले भरवाती रहीं और देखती व समझाती रहीं कि कैसे देना होता है। उसके बाद बोलीं : “अब तुम भरो।” इस प्रकार श्रीमाँ ने उन्हें स्वयं प्रशिक्षित किया था।

इन कर्मयोग के साधक श्री रवीन्द्रजी को मेरा श्रद्धापूर्वक नमन।

—स्व. ज्ञानवती गुप्त

हृदय-वन्दना

(आश्रम के वरिष्ठ साधक हरेकृष्णजी भी गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक हैं। १९४५ से उनका आश्रम में आना शुरू हुआ जो १९६१ तक बरकरार रहा, फिर वे आश्रम में ही आकर बस गये। उनका श्रद्धाञ्जलि-लेख प्रस्तुत है।)

रवीन्द्रजी को भगवदवतार, भगवती माता के साथ अन्तरंग सम्बन्ध में आने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह अन्तरंगता उन्हें मिली कैसे? इसका रहस्य क्या है?

श्रीअरविन्द ने लिखा है, “अर्जुन समसामयिक महापुरुषों में श्रेष्ठ नहीं थे। (वहाँ थे व्यासदेव, भीष्म पितामह, विदुर, युधिष्ठिर, उद्धव, अक्रूर आदि) फिर भी जगत्प्रभु ने अर्जुन का ही वरण किया था। यह पुरुषोत्तम का अन्याय या पक्षपात नहीं है, यह उत्कर्ष है पूर्ण श्रद्धा और आत्म-समर्पण का फल। जो पुरुषोत्तम पर पूर्ण श्रद्धा रख, उन्हीं पर निर्भर रह, कोई दावा न कर अपने शुभ और अशुभ, मंगल और अमंगल, पाप और पुण्य का समस्त भार उन्हें अर्पण करते हैं, अपने प्रिय कर्म में आसक्त न हो उनके आदेशानुसार कर्म करने के इच्छुक, अपनी प्रियवृत्ति को चरितार्थ न कर उनके द्वारा प्रेरित वृत्ति को ग्रहण करते हैं, स्वप्रशंसित गुण का साग्रह आलिंगन न कर उनके दिये गुण और प्रेरणा को उन्हीं के काम में प्रयुक्त करते हैं वे श्रद्धावान् अहंकार-रहित कर्मयोगी ही पुरुषोत्तम के प्रियतम सखा और शक्ति के आधार होते हैं।”

रवीन्द्रजी में आत्मोत्सर्ग का माहा शुरु से था। स्नातक परीक्षा पास कर देश पर आत्मोत्सर्ग करने के इरादे से ही वे उस समय के शीर्षस्थ नेता गाँधीजी की सेवा में वर्धा-आश्रम पहुँचे थे।

माताजी से मिलने के बाद उन्हें लगा कि इन श्रीमाँ के प्रति आत्मनिवेदन जाति के और अपने सर्वाधिक हित में है। इसके बाद उन्होंने न दिन देखा,

न रात; न देखा अपना भोजन, अपनी नींद या अपना विश्राम। देखी केवल माँ की इच्छा, माँ की प्रसन्नता। अगर सवेरे साढ़े तीन बजे काम पर पहुँचना है तो साढ़े तीन बजे उपस्थित हैं, अगर रात साढ़े ग्यारह बजे तक जागने की ज़रूरत है तो साढ़े ग्यारह तक काम में लगे हैं।

टिफिन-गाड़ी खींचने के काम से व कोयला-वितरण के काम से, इन्हें छोटा समझ कर, वे कतराये नहीं। एक दिन दक्षिण अफ्रीका से दो व्यक्ति (सेठ) आये थे। वहाँ रवीन्द्रजी के एक सहपाठी ने उनसे कहा था, भारत जा रहे हो तो पॉण्डिचेरी में मेरे सहपाठी रवीन्द्र से मिल कर ज़रूर आना। जिस दिन वे आये, वह कोयला-वितरण का दिन था। स्वागत-कक्ष में पहुँचने पर उन्हें कहा गया : ‘जरा बैठिये, रवीन्द्र अभी आता होगा।’

थोड़ी देर बाद, आते हुए, कोयले से काले-भभूत बने व्यक्ति को दिखा कर द्वार पर स्थित साधक ने कहा, “यह है रवीन्द्र।” ऐसे कुली व्यक्ति से मिलने में उन्हें संकोच हुआ। उनके सहपाठी की नमस्ते उन्हें जता कर तुरन्त हाथ जोड़ कर जिस होटल में ठहरे थे वहीं वापस चले गये, फिर नहीं आये! देखा आपने, कैसे-कैसे लोग!

ऑरोवील के उद्घाटन के समय उन्हें निरन्तर व्यस्त रहना पड़ा। चौथे दिन प्रातः उठे तो कमज़ोरी महसूस हुई, तब ख्याल गया कि तीन दिन से उन्हें भोजन खाने की भी फुर्सत नहीं हुई है।

उनका सारा जीवन ऐसे-ऐसे अनेक प्रसंगों से भरा पड़ा है जो दिखाते हैं कि उन्होंने कभी अपनी ओर नहीं देखा, देखा केवल माँ के काम को।

श्रीमाँ के किसी काम को न करना तो वे जानते ही न थे। छोटा हो, बड़ा हो, कठिन हो, कैसा भी हो, वे हमेशा करने को तत्पर रहते थे। यह नहीं कि वे केवल अधिक काम करने वाले थे बल्कि माँ के सम्पर्क के साथ काम करने वालों में से थे। इसीलिए माँ ने कहा था, “काम की दृष्टि से एक युवा व्यक्ति अधिक ऊर्जा से भरा होगा पर वह समझेगा कि वह स्वयं काम कर रहा है जब कि तुम मुझे बुला सकते और अनुभव कर सकते हो। अच्छा है तुम काम जारी रखो।”

ऐसे एकनिष्ठ, सत्य-हृदय, सर्वतोभावेन अपने-आपको उत्सर्ग करने वाले साधक को अन्तिम दिनों में कष्ट सहने पड़े, कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं—यह कुछ लोगों को आश्चर्य की बात लग सकती है। पर देशभक्तों के कष्ट,

उनकी यातनाएँ उनकी कुर्बानियों के रूप में याद किये जाते हैं। भौतिक में साधना के फलस्वरूप उठी कठिनाइयों में हिस्सा बँटाने वाले ये साधक भी आगामी दिव्य जाति के लिए पथ प्रशस्त करने वाले वीर सेनानी हैं और आगे चल कर इनकी कुर्बानियाँ याद की जायेंगी।

सत्य हृदय से, पूर्णपन से अपने-आपको दे देने वाले जो-जो साधक हैं वे मशाल हैं, प्रेरणा-स्तम्भ हैं, उन्हीं में रवीन्द्रजी भी एक हैं। इस अवसर पर उनकी स्मृति हमारे अन्दर फिर से ऐसी प्रेरणा को जगाने वाली हो।

‘पुरोधा’ जनवरी २००२

—हरि भाई

श्री रवीन्द्रजी की जन्म-शताब्दी पर

(छोटी-सी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि)

२६ जनवरी... यह तारीख सुनते ही हर भारतवासी के मन में सहज रूप से गणतन्त्र दिवस का ख्याल आता है, जो बिलकुल स्वाभाविक और सच है। लेकिन मैं बात कर रही हूँ २६ जनवरी १९१७ की, जब भारत अभी स्वतन्त्र नहीं हुआ था। अभी वह अँग्रेजों के चंगुल में बुरी तरह जकड़ा हुआ था। धरतीमाता को फ़िरंगियों के दबाव और अत्याचारों से मुक्त करने के लिए संघर्ष और आन्दोलन शुरू हो चुके थे। हर तरह से प्रयास जारी थे। जान जोखिम में डाल कर, अनगिनत भारतीय नौजवान अपनी भारतमाता की स्वतन्त्रता के लिए मौत को खुशी-खुशी गले लगा रहे थे। इन महान् क्रान्तिकारियों में से एक थे श्रीअरविन्द। १९१० में अँग्रेज़ हाथ धोकर उनके पीछे पड़े हुए थे। रातोंरात श्रीअरविन्द पॉण्डिचेरी आ पहुँचे थे, जो उन दिनों फ़रासीसियों के कब्जे में था। इसलिए अँग्रेज़ हाथ मलते रह गये, वे श्रीअरविन्द का बाल तक बाँका नहीं कर पाये!

ठीक सात साल बाद, यानी १९१७ में हमारी आज की कहानी के मुख्य किरदार का जनम हुआ था। उनका नाम था श्री रवीन्द्रजी। उनका जन्मस्थान तो किसी को मालूम नहीं था। सुना है, किसी ने साहस बटोर कर उनसे पूछा तो जवाब मिला, “मैं भारत देश का पुत्र हूँ, किसी प्रदेश का नहीं!” वे बस इतना ज़रूर बताते थे कि उनकी शिक्षा ‘गुरुकुल’ में हुई

थी। ठीक किस साल वे पॉण्डिचेरी आ गये थे यह मुझे ठीक मालूम नहीं, बस इतना मालूम है कि तरुणावस्था में ही आ गये थे। वे केवल देखने में ही हट्टे-कट्टे और लम्बे-चौड़े नहीं थे, बल्कि अनुशासन और स्वभाव से भी कठोर थे। यह बात बिलकुल आश्चर्यजनक नहीं थी, क्योंकि वे 'गुरुकुल' के छात्र जो रह चुके थे। कहते हैं कि उन दिनों 'गुरुकुल' की शिक्षा किसी तपस्या से कम नहीं होती थी। न केवल पढ़ाई की दृष्टि से कठोर, बल्कि शारीरिक रूप से भी। छात्रों को किसी प्रकार के सुख-चैन नहीं मिलते थे। परिणाम-स्वरूप वहाँ के छात्र ऋषि-मुनियों से कुछ कम नहीं होते थे! उनकी रग-रग में ज्ञान, भारत के प्रति प्रेम, उसके संस्कार और दृढ़ अनुशासन कूट-कूट कर भरे होते थे।

मेरा सम्बन्ध रवीन्द्रजी से तब हुआ जब आश्रम-विद्यालय की छात्रा रहते वक्त, अहिन्दी भाषी होते हुए भी, मैंने हिन्दी पढ़नी चाही।

उत्साह तो बहुत था, मगर आत्म-विश्वास नहीं था। मेरे साथ कक्षा में जितने भी थे सभी की मातृभाषा हिन्दी थी। उन सभी ने बोलना सीखा था तो हिन्दी में। उनके लिए जो स्वाभाविक था वह मेरे लिए कठिन बन जाता था। यहाँ तक कि कौन-सा शब्द स्त्रीलिंग है और कौन-सा पुल्लिंग, इसके लिए भी माथा-पच्ची करनी पड़ती थी। संकोच के मारे मैं सहमी-सहमी-सी रहती थी।

फिर रवीन्द्रजी हमारी कक्षा के अध्यापक बने। आपको तो मालूम ही है कि अनुशासन में वे कितने कठोर थे। अगर दूसरी घण्टी बज जाने के एक मिनट बाद भी हम आते, तो कक्षा में घुसने की हिम्मत नहीं होती थी। काटती-कचोटती धूप हो या मूसलाधार बारिश, सातवें अन्तर, यानी सवा तीन बजे कक्षा के लिए वे ठीक तीन बजे ही आकर खड़े हो जाते थे। एक दिन भी उन्होंने छुट्टी नहीं ली, न ही आने में देर करी।

एक दिन मुझे याद है, बारिश की वजह से मैं पूरे पन्द्रह मिनट देर से पहुँची। डर लग रहा था अन्दर जाने में, मगर न जाती तो शायद और भी बुरा हाल होता। आखिर साहस बटोर कर मैंने पूछा, "रवीन्द्रजी, मैं आऊँ?" मुझे पूरा विश्वास था कि वे मुझ पर आग-बबूला होकर बरस पड़ेंगे। जो व्यक्ति वक्त के इतने पाबन्द थे, वे भला पूरे पन्द्रह मिनट की देर किस तरह बरदाश्त करेंगे? मगर उन्होंने मेरी ओर देखा और हँसते हुए कहा,

“अरे, म्याऊँ म्याऊँ करती हुई यह भीगी बिल्ली कहाँ से आ गयी?!” में बुत बन कर वहीं की वहीं खड़ी रही तो बोले, “सर्दी लग जायेगी बारिश में, जल्दी से अन्दर आ जा!”

यही थी उनकी खूबी। बाहर से कठोर, अनुशासन-प्रिय, मगर अन्दर से भावुक, संवेदनशील और हास्यप्रिय। हर विद्यार्थी की दुर्बलता और सबलता समझ कर उसके मुताबिक सहायता करते थे। कठोर दण्ड देकर फिर अगले ही क्षण माफ़ करने की क्षमता रखते थे, और सबसे बढ़ कर, उन्होंने अपने विद्यार्थियों के साथ एक ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था कि हमें उनकी कक्षा का इन्तज़ार रहता था। हफ़्ते में तीन दिन हिन्दी पढ़ायी जाती थी, और वे इस तरह बाँटे जाते थे : एक दिन काव्य के लिए, एक दिन गद्य के लिए और तीसरा, कक्षा में बैठ कर लिखने या फिर बोलने के लिए, ताकि हम अपने-आपको दोनों तरह से व्यक्त करना सीख सकें। जैसे-जैसे हम प्रगति करते गये, मेरा आत्म-विश्वास भी बढ़ने लगा, और हमारे सामने एक अनोखी दुनिया प्रकट होती गयी।

रामायण और महाभारत की रसीली कहानियाँ नानी से सुनी तो थीं, मगर यहाँ हम उन्हें मानों मन की आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से घटते देख रहे थे। झाँसी की रानी की वीरता, शिवाजी की शूरता की कहानियाँ भी हमने पढ़ीं। और हाँ, मुंशी प्रेमचन्द की अमर कहानियाँ, फिर शरतचन्द्र की नारी के मन और हृदय को थाहने वाली कहानियाँ। महादेवी वर्मा की कहानियाँ और कविताएँ, जिन्होंने हृदय को भेद कर वहाँ सदा के लिए स्थान पा लिया है। अगर मैं एक-एक लेखक और कवि का नाम लेने लगूँ, जिनकी रचनाओं का हमने रवीन्द्रजी के साथ अध्ययन किया, तो बहुत समय लग जायेगा! मगर हिन्दी-साहित्य के कुछ महान् लेखकों का ज़िक्र तो करना ही पड़ेगा जिनका परिचय रवीन्द्रजी ने उनकी रचनाओं द्वारा हमसे करवाया : ‘सुमित्रानन्दन पन्त’, ‘दिनकर’, ‘प्रसाद’ और ‘महादेवी वर्मा’। किताबों में सब कुछ छपा तो रहता है, मगर बस उन्हें खोल कर पढ़ लेना ही तो काफ़ी नहीं है। पढ़ कर समझाने की, विचार-विमर्श करने की, उनका आनन्द लेने की क्षमता चाहिये और इसीलिए विद्यार्थियों को मार्गदर्शन देने वाले अध्यापक की ज़रूरत होती है। हिन्दी में रस तो था ही, और एक ऐसे आदर्श अध्यापक पाने का मुझे सौभाग्य भी मिला।

हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष होने के साथ-साथ, रवीन्द्रजी आश्रम के अनेक विभागों की बागडोर भी सँभालते थे। मगर वे कभी यह एहसास नहीं होने देते थे कि उनके कन्धों पर इतनी सारी ज़िम्मेदारियाँ हैं। वे सब कुछ श्रीमाँ का काम समझ कर पूरी सच्चाई और पूरे समर्पण के साथ करते थे।

पढ़ाई खत्म करने के बाद मैंने दो साल उनके साथ हिन्दी-विभाग में काम भी किया। श्रीमाँ की जन्म-शताब्दी के दौरान “श्रीमातृवाणी” के अनुवाद में मेरा थोड़ा-सा योगदान रहा। तब भी, हालाँकि मैं विद्यार्थी नहीं थी, दृढ़ अनुशासन तो बरकरार रहा!! यहाँ तक कि इतवार को भी छुट्टी नहीं मिलती थी! मुझे याद है, काम शुरू करने के बाद, पहले इतवार को मैं काम पर नहीं गयी। आखिर इतवार जो था, मेरे तो ज़ेहन में भी यह ख्याल नहीं आया कि उस दिन भी काम हो सकता था! जब अगले दिन मैं हाज़िर हुई तो देखा कि रवीन्द्रजी की शकल गम्भीर थी। हँस कर ऊँची आवाज में स्वागत करने वाले रवीन्द्रजी, आज इतने चुप और गम्भीर क्यों थे? माथा ठनका कि कोई गलती तो मुझसे जरूर हुई है, मगर कौन-सी?!! फिर वे बोले, “कल मैं तेरा इन्तज़ार करता रहा। क्यों नहीं आयी?” मैंने सोचा, यह कैसा सवाल है! मैंने कहा, “कल इतवार था, इसलिए मैं नहीं आयी।” उन्होंने कहा, “इतवार था तो क्या खाने-पीने और सोने की भी छुट्टी थी?” मैंने कहा, “नहीं, नहीं, उन सब कामों की छुट्टी कैसे हो सकती है? तब तो सेहत खराब हो जायेगी।” तो उन्होंने कहा, “देख, श्रीमाँ ने मुझे जिन-जिन विभागों की ज़िम्मेदारियाँ सौंपी हैं, उन सबमें छुट्टी नहीं होती—जैसे कि भोजनालय है, अनाजशाला है, बेकरी है... और मेरा मानना है कि अनुशासन भी सेहत के लिए अच्छा है!” तब तो शुरू-शुरू में मुझे यह बात अजीब लगी थी लेकिन धीरे-धीरे मैं उसकी आदी हो गयी, और अब इतवार को भी कोई काम आ जाये तो मैं बेझिझक कर सकती हूँ!

२४ अगस्त २००१ को श्री रवीन्द्रजी का स्वर्गवास हो गया। और इस साल २६ जनवरी २०१७ को उनकी जन्म-शताब्दी है। शताब्दी शब्द सुनते ही हमें इतिहास का, पुरानी बातों या चीज़ों का, बहुत लम्बी उमर का ख्याल आता है। यह तो सोलह आने सच है कि वक्त के हिसाब से सौ साल बहुत ज़्यादा होते हैं। लेकिन सच पूछो तो मेरे ख्याल से मुझे रवीन्द्रजी के बारे में ऐसा बिलकुल नहीं लगता, क्योंकि जो यादें और छवि

दिल और दिमाग में बसी हुई हों, वे कभी पुरानी नहीं हो सकती हैं, न ही फीकी पड़ सकती हैं।

रवीन्द्रजी न केवल हिन्दी भाषा के मेरे प्रिय अध्यापक थे, बल्कि दोस्त बन कर मुझे ज़िन्दगी के कई पाठ भी पढ़ा गये।

उनके सभी पुराने विद्यार्थियों की तरफ़ से यह है उन महान् आत्मा के प्रति एक छोटी-सी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि।

—कनिष्ठा

“मत्कर्म परमो भव”

किसी के जीवन के दीर्घकाल को कई वर्षों में धीरे-धीरे देखना, उनके साथ रह कर काम करना और उन्हें समझ पाना एक बात है, लेकिन उसी व्यक्ति के जीवन के सारे कार्यों और उसके व्यक्तित्व को कुछ ही पलों में सिमटा कर एक साथ देख लेना या यादों में दोहरा लेना एकदम दूसरी बात है।

पहली स्थिति में हमारे मन पर उस व्यक्ति की छाप कभी गहरी पड़ती है तो कभी रोज़ की दिनचर्या में अनदेखी ही रह जाती है क्योंकि हम उनको उसी तरह देखने के इतने अभ्यस्त हो गये होते हैं कि उसकी कोई खास छाप लेकर मन में नहीं सँजोते।

रवीन्द्रजी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर आश्रम के विद्यालय में पढ़ने वाले आज के विद्यार्थियों के लिए, जिनमें से अधिकांश ने रवीन्द्रजी को न कभी देखा न ही उन्हें उनका कोई परिचय है, गोपाल डालमिया ने (जो न केवल उनका छात्र था बल्कि काफ़ी समीप से उनके साथ जुड़ा रहा) रवीन्द्रजी के आश्रम आने की शुरुआत की कथा से अन्त तक की अनेक घटनाओं, क्रिया-कलापों और विलक्षण प्रतिभाओं को, उनके चित्रों के साथ “पावर-पॉइंट” की तरह तैयार करके प्रस्तुत किया, जो बड़ा प्रभावशाली और रोचक था।

रवीन्द्रजी के जीवन के दीर्घकाल को जब कुछ पलों में सिमटा कर देखा तो उनकी विलक्षण प्रतिभा और विशेषताओं ने मेरे मन में कुछ प्रश्न

जगा दिये, कुछ भाव आये! शायद, ये भाव मेरी अपनी कल्पनामात्र हों!

भारत में यह माना जाता है कि भगवान् जब अवतार लेते हैं तो अनेक देवी-देवता और उनके पार्षद उनकी सहायता करने मानवरूप लेकर धरती पर उतर आते हैं और भगवान् के कार्य को सुन्दर रूप से घटित करने में सहयोगी बन जाते हैं। यह सबको पता भी नहीं चलता कि कौन किसका रूप लेकर भगवान् की सेवा में लगा है। जैसे, श्रीराम के कार्य को पूरा करने हनुमान् के रूप में शिव का अंश उतरा था। हनुमान् श्रीराम के प्रियतम सेवक, दूत, सहयोगी, अनन्य भक्त आदि अनेक भाव से श्रीराम की सेवा में लगे रहे।

आज आश्रम के अनेक पुराने साधकों को याद करके मन में भारत का वह विश्वास प्रबल हो जाता है क्योंकि वे सब भी तो श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के अनन्य भक्त, प्रिय सेवक, सहयोगी आदि अनेक रूपों में काम करते रहे। कोई नहीं जानता कौन किस देवता का अंश रहा होगा, किसका रूप था, किसकी शक्ति को भगवान् की सेवा में लगाता जा रहा था! द्युमान् भाई, उदार दा, बुला दा, प्रणव दा, अमृत दा, पवित्र दा, नलिनी दा, रवीन्द्रजी... अन्त नहीं है इन नामों का! भगवती माँ के एक दिव्य जगत् की कल्पना को धरती पर साकार करने में पूरी भक्ति, शक्ति, मन-प्राण और आत्मा, सब कुछ समर्पित करके जुट गये थे ये लोग।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्धभूमि में 'गीता' का उपदेश दिया था। उनका एक आदेश था—“*मत्कर्म परमो भव*”, अर्थात्, 'मेरे प्रति समर्पित कर्म ही तुम्हारे लिए परमोच्च हो जाये।' सरल शब्दों में कहें तो “भगवान् के लिए काम करने वाला बन जाओ।” और, अर्जुन भगवान् के कार्य का यन्त्र बन गया।

आश्रम में तो जैसे अनेक अर्जुन इकट्ठे कर डाले श्रीमाँ और श्रीअरविन्द ने। वे भक्त, वे कर्मवीर इसी मन्त्रशक्ति—“*मत्कर्म परमो भव*” से भरे हुए वर्षों-वर्षों, दिन-रात, बिना रुके, बिना विश्राम किये—अथक, इसी सत्य को जीते रहे—“भगवान् के लिए काम करो”। यही उनके जीवन का मन्त्र था, उनकी साधना थी, उनकी साँसें थीं। जब तक साँस लेते रहे माँ का काम करते रहे—निःस्वार्थ! पूर्णसमर्पित! आनन्दपूर्वक! कभी कोई शिकायत नहीं, कभी कोई रुकावट नहीं!! उन साधकों के रहते इसी भाव से भरा

था आश्रम का जीवन। ‘मत्कर्म परमो भव’ की भक्तिपूर्ण किन्तु अन्तर्मुखी साधना ही आश्रम जीवन के स्पन्दन थे।

अब, जो प्रश्न मेरे मन में उठा वह था—रवीन्द्र जी तो गुरुकुल काँगड़ी से पढ़ कर, २१ वर्ष की उम्र में यहाँ आ गये। गुरुकुल के आर्यसमाजी वातावरण में पले-बढ़े नवयुवक में श्रीराम की भक्ति की धारा कब फूटी? वे *रामचरितमानस* के इतने प्रेमी कैसे बन गये? अपने छात्रों को वर्षों तक *रामचरितमानस* के साथ कैसे जोड़ते रहे? अवश्य यह श्रीराम-प्रेम किसी और कारण जागा होगा, शिक्षाकाल का तो लगता नहीं। क्या होगा इसका आधार? क्या श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के सान्निध्य ने उनमें कुछ जगा दिया?

अचानक मन ही मन रवीन्द्रजी की विशाल आकृति, लम्बा-चौड़ा बलिष्ठ शरीर, गौर वर्ण, कर्मठ व्यक्तित्व याद करते ही तुलसीदासजी की कृति ‘श्रीहनुमान चालीसा’ की कुछ पंक्तियाँ मेरे मन में गूँज उठीं—

“रामदूत अतुलित बलधामा।”, “महाबीर बिक्रम बजरंगी।”

“बिद्यावान गुनी अति चातुर। रामकाज करबे को आतुर।।”

मन ने कहा—‘अरे रवीन्द्रजी जब से यहाँ आये तब से आश्रम के भारी-भरकम कामों को अकेले ही करने के बल—‘अतुलित बल’ की ही तो झाँकियाँ देखी थीं “पावर-पॉइण्ट” के उन चित्रों में! अनेक क्षेत्रों के कामों को एक साथ कर सकने की क्षमता और पराक्रम के बारे में सुना था! श्रीमाँ के काम को करने का आतुर उत्साह और असम्भव को भी सम्भव बना पाने का संकल्प देखा! उनकी आयुर्वेद की विद्या और चतुर गुणों का परिचय मिला! कहीं ये सभी गुण श्रीराम के भक्त हनुमान् जैसे ही तो नहीं? अगर हाँ, तो राम-भक्ति की धारा तो फूटनी ही थी।

रवीन्द्रजी का कर्मठ जीवन, बलिष्ठ शरीर, श्रीमातृ-सेवाव्रत, जो काम हाथ में लिया उसे पूरा करने का अटल विश्वास, एकनिष्ठ भक्ति और समर्पण और उसके साथ *रामचरितमानस* के प्रति प्रगाढ़ प्रेम! कहीं हृदय से हनुमान् का अंश ही तो पुनः अपने प्रभु की सेवा करने नहीं पहुँच गया रवीन्द्रजी के रूप में?’

भगवती की लीला में कुछ भी असम्भव नहीं!! कौन-कौन देवी-देवता माँ की लीला में आनन्द लेते रहे, साथ देते रहे, कौन जानता है?

—अर्चना माहेश्वरी

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनूं श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनूं (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमां के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगाकर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

पंकज बगड़िया

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर

मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला

पो०-झुंझुनूं — ३३३००१ (राजस्थान)

टेलीफोन — (०१५९२) २३२८८७, २३७४२८

टेलीफैक्स—२३७४२८

e-mail: sadlecjnn@rediffmail.com

URL: WWW.sadlec.org

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यभावी और अनिवार्य है।

— श्रीअरविन्द



अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन— 0565—3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st April 2017

Rs. 15.00 (Monthly)

RNI No.18135/70

Registered: SSP/PY/47/2015-2017

WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group **vatika**

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Hopana Mukherjee, Mother

Section: 1B, Block: 3, Sec: 1, Vatika Group, Gurgaon



Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Classrooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr. Anjali Chopra

Director of Vatika Group, Sec: 1

ADMISSIONS OPEN

Academic Year 2016-17



MatriKiran

Junior School **SOHNA ROAD**

Pre-Nursery to Grade 5

Senior School **VATIKA INDIA NEXT**

Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in

+91-124-4938200, +91-9650690222

Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • Senior School: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon